[प्रगतिशील साहित्य की ज्वलंत छटा]

'मोही नारि नारि के रूपा'

(सच्ची घटनाओं पर आधारित)

[रहस्यमय, रोचक, रोमांचक कहानियाँ]

'सर्वजनसुखाय, सर्वजनहिताय'

एक मात्र लोक-कल्याण की दृष्टि से

समाज के एकदम छिपे हुए कुत्सित, दूषित, भीषण जहरबातों का

जलता, लहकता आपरेशन-उपचार

"बिजली"

सन् १९४५] [मूल्य ११)

मोहल्ले की कुछ मनचली युवतियों स्त्रियों को चवाव करने, तरह-तरह की गढ़ी हुई सनसनीदार बातें फैलाने का अच्छा अवसर मिला। आस पास के गुंडों भौंरों को ज्वाला के प्रति आकर्षण हुआ था। उन्होंने जाल भी डाले, डोरे फेंके, लासे लगाये, पर ज्वाला को अपनी ओर न खींच सके। उस पर उनकी चालों-घातों का कोई भी असर न पड़ा। उन्हें हरेन से ईर्ष्या हुई और हुई ज्वाला से जलन। उन्होंने भी ज्वाला और हरेन को लेकर एक खासी कहानी गढ़ली और उसे खूब फैलाया। कुछ एक ने हरेन को भी फुसला-फँसाकर अपनी गुट में मिला लिया। वह भाई बनकर ज्वाला के पास जाता, उससे तरह तरह की चीजें माँग लाता, रूमालों में फूल-पत्तियाँ कढ़वा लाता, ज्वाला की वस्तुएँ उड़ा लाता। और उन्हें उन गुंडों को दिखलाकर अपनी अनुचित सफलता की डींगें मारता।

मामला बढ़ता गया। जनरव ने बड़ा ही भौंड़ा, वीभत्स्य, लज्जाजनक, अश्लील रूप धारण किया। ज्वाला का मुँह दिखलाना कठिन हो गया। उसने हरेन के यहाँ आना-जाना छोड़ दिया, उसके सामने निकलना बन्द कर दिया और अपनी हँसी को, दया ममता को बान को बहुत कुछ कम कर दिया। पर उसे त्राण न मिला। कलंक ने, झूठे कलंक ने उसे राहु बन कर ग्रस लिया। उसके विवाह के अनेक उद्योग उस जलते-दहकते काजल के आगे भस्म हो गये। और चार साल बीत गये। पर आज भी ज्वाला का उस दिन का काजल उसके लिए जलता दहकता काजल बना हुआ है। उस काजल की ज्वाला दिन-दिन बढ़ती जा रही है। उसकी जलन की ज्योति ज्वाला को चारों ओर से दहका, झुलसा और जला रही है।

जलता-दहकता काजल उसके भविष्य का काल बन गया है।

——:o:——

प्रेम के पाप का तूफान

अफगानिस्तान से लौटने पर मेरी नजर उस पर पड़ी और उसकी चंचलता और शोखी पर मैं मुग्ध हो गया। रंग उसका साफ था, आँखें बड़ी-बड़ी, चेहरा दमकता हुआ, बदन खूब गँठा और चुस्त। उसका अंग-अंग फड़कता रहता। सुर्ख-सफेद-काली आँखें सदा नाचा करती। मूँगासे सुर्ख होंठो पर मन्द मधुर मुस्कान की लाली हमेशा बिखरी रहती। चुप रहना या शान्त बैठना तो वह जानती ही न थी। जैसे पारे से उसकी बोटी-बोटी सराबोर हो, जैसे उसकी जबान पर ग्रामाफोन का रेकार्ड सदा चालू रक्खा जाता हो ऐसी थी मधु।

मैं उसके माता-पिता के लिए अपरिचित या बाहर का न था। पर मधु मेरे लिए नई चिड़िया थी और मैं उसके लिए एकदम अनोखा अजनबी था। मै इगलैण्ड और अन्य देशो मे हवाई जहाज का काम सीखने गया और कई बरस बाद लौटा। और यहाँ आकर भी बिना घर वालो और नाते-रिश्ते के लोगो से ठीक से मिले ही भारत के बड़े-बड़े शहरो का चक्कर लगाता हुआ सीधा अफगानिस्तान जा पहुँचा। उस पहाडी देश मे रह भी गया काफी दिन तक। और इसी बीच मे मधु ने प्रकट हो कर हसते-निकलते हुए बढ़ना जारी रक्खा। वह भी बडी तेजी से। इसी बीच मैं बाहर से लौटा। मधु पर मेरी दृष्टि पडी और मैं अवाक् रह गया। इतना सौन्दर्य, इतनी शोखी, ऐसा अपूर्व लीला विलास! जब मैं घर पर रहता तब मधु मेरे सामने नाचती-फदकती रहती। और जब इधर-उधर जाता तो मेरे मानसिक नेत्रों के सामने उसका थिरकना-किलकना जारी रहता। मेरी आँखो में ऐसी समा गई थी वह।

और मेरे आने पर पहले तो मधु कुछ झेपी-झिझकी, किन्तु कुछ ही समय बाद वह मेरी ओर खिंच आई। और दिन के प्रायः बीतते-न-बीतते हम दोनो घुल-मिल कर एक हो गये। जैसे वर्षो के घनिष्ट मित्र हो। सदा एक दूसरे के साथ रहते और आपस मे कुछ-न-कुछ फुसफुसाने-बुदबुदाने मे दीन-दुनिया को बिसारे रहते। उसे देश-विदेश का मनोरंजक बातो-वर्णनो को सुनते-सुनते अघाव न होता। मुझे उसक कोमल-कठ से निकले तरह-तरह के प्रश्नों के उत्तर देने मे आनन्द का अन्त न देख पड़ता। और मेरी बातो को मुग्ध भाव से सुनते समय उसकी सहज तेज पूर्ण बड़ी बड़ी आँखें और भी अधिक चमकीली होकर विस्मय आनन्द से फैल जाती और उसके लाल-लाल ओंठ खुल कर मोती से सुन्दर सुडौल आभादार दाँतो की पक्ति को झलक बिखेर देते। वह संगमरमर को मनोरम मूर्ति की तरह कधे को एक अदा से झुका, सुराहीदार गर्दन तनिक टेढ़ी कर, रेशमी मुलायम घुँघराले बालो वाली लहराती लटो से सुशोभित सुगढ़ सर को तिरछा कर आश्चर्य भरी नजरो से एकटक मेरी ओर देखती रह जाती। और मैं उसे उस स्थिति मे देख कर सब कुछ भूल जाता।

हम दोनो के दिन मजे मे बीत रहे थे। मै आया था दो-चार दिन के लिए। पर महीना बीत गया और न मेरा मन जाने को राजी होता, और न मधु मुझे जाने देने के लिए तैयार होती।

प्रायः रात-दिन एक साथ रहने, खाने, उठने-बैठने, चलने-फिरने के मुझे और मधु को लोगो ने युगल-जोड़ी के नाम से पुकारना शुरू कर दिया था। और इत्तिफाक से यदि कभी हम मे से कोई एक अलग देख पड़ता तो छोटे-बड़े सभी आश्चर्य दिखलाते हुए तड़ाक से पूछ बैठते—'ओहो! इस समय अकेले कैसे? यह अभिन्न जोड़ी फूट कैसे गई?'

कैसे मजे मे दिन बीत रहे थे! इतना सुख-सन्तोष था उस

तरह के अभिन्न जोवन मे !! मधु की और मेरी खूब ही पटरी बैठी। मैं उससे सन्तुष्ट था, वह मुझसे खुश।

और मै पचास बरसो की लम्बी आयु पार कर चुका था। किन्तु मधु ने अभी तक ज्यादा-से-ज्यादा सात-आठ बसन्तो की मधुर-सुहावनी बहारें ही देखी थी। नन्ही बच्ची ही तो थी वह।

दुनिया की झंझटो से ऊबे और नित्य के कठोर कामो से थके बातूनी मनुष्य को बुढ़ापे की लपेट मे आने के बाद सुख-सन्तोष-शान्ति के मधु-कण कहाँ मिलते हैं ? धन मे ? पद मे ? सम्मान मे? सुन्दरी युवती स्त्री मे? नही। इन सब से लड़ते-टकराते तो उसे सारा जीवन बिताना पड़ता है। इनसे उसे अरुचि-सी, चिढ़-सी हो जाती है। ऐसे मनुष्य का सुख-सन्तोष-शान्ति की प्राप्ति होती है, मधु की आयु के हँसमुख, चञ्चल, चतुर, बुद्धि-सम्पन्न बालक-बालिकाओ के सत्संग मे ही।

और मैं इंगलैण्ड, योरोप, अफगानिस्तान, भारत महान की महा नगरियो की ठोकरो से भाग कर इस छोटे से स्थान मे आया और मधु की निश्छल क्रीड़ाओ मे रम गया।

वह मेरी मानस-पुत्री थी, मैं उसका माना हुआ पिता, खेल का साथी, अभिन्न हृदय मित्र।

समय अपनी मस्तानी, बेरुखी, तेज चाल से निकलता गया, वर्षों के भारने मेरे शरीर को झुका-दबा-घिसा डाला। तन कर अकड़ के साथ खड़ा होता तो आज भी मैं साढ़े सात फुट के लम्बे दानव की झलक दे सकता था। पर भारतीय बुढ़ापे का ढेर हिमालय-पर्वत सा स्पष्ट देख पड़ता। और मेरे उमग पर संयमी जीवन की सघन लता-कुञ्जो से अच्छादित भी उसकी हिमाच्छादित धवल चोटियाँ उठ-उठ कर नजरो के सामने आती ही रहती। और उन्ही गम्भीर वर्षों के मधुर रस से मधु के शरीर की बोटी-बोटी पुष्ट होकर बढ़-उभर-खिल रही थी। हरद्वार से

'मोही नारि नारि के रूपा"

आस पढ़ने फैलने वाली गंगा की उज्ज्वल, गहरी धारा की भांति मधु मे धीरे-धीरे अलक्षित किन्तु स्पष्टरूप से प्राकृतिक परिवर्तन हो रहे थे।

मेरा अपना जीवन बिताने का ढङ्ग था, एक विशेष पद्धति थी। सारी लम्बी आयु के अगाध अनुभव को मैं किसी नये जीव में सक्रिय रूप से कार्य सञ्चालित होते देखने की लालसा को दबा न सका। पहले भी अनेक बालक-बालिकाओं को अपने ढंग से जीवन व्यतीत कराने के मैंने प्रयत्न किये थे। पर उनमे से एक भी मुझे सन्तोष न दे सका। और इसी कारण मैं पचास के पार पहुँचते-पहुँचते कुछ निराश-हताश-सा हो गया था। और वर्षों पैर के शनि-देव को सन्तुष्ट करने के निमित्त हजारों मील सुखद-कष्ट कर यात्राओं के बाद एकाएक मधु के सम्पर्क मे आया और मधु के शरीर के अंगो मे, उसके मस्तिष्क की प्रसुप्त शक्तियो मे, उसके मन की अन-अनुभवित उमंगो भावनाओं में मैंने जो कुछ देखा-पाया उससे मुझे विश्वास हो गया कि मेरे मन की मुरझाई लताओं को सूखने की आशंका नहीं है। मधु उनमे आशा-विश्वास का जल सींच कर उन्हे फिर से लहलहा सकती है, अपने सफल जीवन-क्रम से उन्हे पुष्पित-पल्लवित-फलित कर सकती है।

हम दोनो ने एक दूसरे को ऐसा अपनाया कि मिल कर एक हो गये। वह मेरे बुढ़ापे की लाठी बनी। मुरझाई हुई आशाओं को प्रफुल्लित करने वाली वनदेवी। सब तरह की उत्तम भावनाओं की एक मात्र केन्द्र, मानस-पुत्री। और मैं बना उसके सुख स्वप्नों को साकार कर दिखाने वाला विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक विद्या-ज्ञान-व्यायाम का मान्य गुरु, स्नेह-ममता-आशा-विश्वास का केन्द्र, पितृरूप अभिभावक।

वह उछलती-कूदती मेरे कंधो पर पहुँच जाती। पेड़ की

डाल पर से कूद कर मेरी गर्दन पर आ बैठती। जल की अथाह तेज धारा मे तैरते-तैरते या तो मेरा पैर पकड़ कर नीचे खींच ले जाती या मेरी पीठ पर सवार होकर खूब तेजी से तैरने के लिये शाहाना हुक्म चलाती। हम अखाड़े मे छूट जाते और लाठियो से एक दूसरे को मार गिराने की ताबड़ताड़ चेष्टा करते। अस्त्र-शस्त्र चलाने मे हम एक दूसरे का मात देने की कोशिश मे रहते। मोटर तथा अन्य नवीन यानों के सचालन मे हार-जीत की बाजी लगाते।

मधु के सोलहवे वर्ष मे पहुँचते-पहुँचते मैंने अपने जीवन के मशीन और अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी प्रायः सभी अनुभव उसके कोमल किन्तु सबल, सुघुक, कुशल हाथों मे भर दिये। सभी रहस्य उसके तेज मस्तिष्क के हवाले कर दिये। और इन सबके साथ ही अबाध रूप से चल रहा था उसका साधारण शिक्षा-क्रम। तब तक में उसने अपने असाधारण बुद्धिबल पर इंटर से आगे बढ़ बी० ए० मे पैर रक्खा था। ऐसी पुत्री, इतनी तेज शिष्या पर गर्व कैसे न होता।

एक बार सयोग से जिस ट्रेन से हम यात्रा कर रहे थे, वह दूसरी गाड़ी से लड गई। टक्कर बडी भीषण थी। मधु खिड़की के मोटे शीशे को लेती दूर बाहर जमीन पर जा गिरी। चोट खासी आई, पर अन्दरूनी! जाड़े के दिन थे। पर अपनी परवाह न कर वह झाड-पोछ कर उठी और तेजी से बढ़ कर मुझे सहायता करने की कोशिश मे लग गई। उसके साहस, फुर्ती, कौशल, धैर्य मे सभी मुग्ध-चकित रह गये।

कई बार उसने कूल-किनारों
हुई बरसाती नदियो की तेज
धारा था, बहुतों को जलते
से धुँएँ और आग की

अवसरों पर डाकुओं की गोलियों की बौछारों और तलवारों की धारों की दीवालों के बीच से निरीह स्त्री-पुरुषों की रक्षा की थी।

मधु में सिंह-वाहनी शक्ति का-सा साहस था, सरस्वती के सदृश बुद्धि, ज्ञान, कौशल, कला-प्रेम। उसने एम० ए० की परीक्षा दी। मैंने एक ऐसा काम पाया जिसमे मुझे देश के सैकड़ों स्थानों पर जाना और छोटे-बड़ों के संसर्ग में आना था। मधु को भी फुरसत थी। और मैं भी उसे ऐसे अवसर पर यात्रा के अनुभव के विचार से साथ रखना चाहता था।

इस यात्रा से मधु को काफी देखने-समझने का मसाला मिला। किन्तु अनजाने में इसी एक यात्रा ने उसकी जीवन-यात्रा का क्रम ही बदल दिया। पर इन बातों का पता तब चला जब मर्ज लाइलाज हो चुका था, जब कातिल ज़हर भरपूर असर फैला चुका था, जब प्रतिरोध का अवसर हाथ से निकल चुका था।

मधु दुनिया की नजरों में सयानी हो गई थी, पर मेरी वृद्धावस्था की शक्तिहीन आँखों में तो वह वही सात-आठ साल की अबोध बालिका बनी रही। मेरा भाव उसके प्रति जैसा तब था, ठीक वैसा ही इस समय भी रहा। मैं उसका पिता बन चुका था वह मेरी अपनी पुत्री। भाव में परिवर्तन होता भी तो कैसे। पर दुनिया ने, अंधी जनता ने इन भावनाओं को देख कर भी न देखा-समझ कर भी न समझा। और देखा-समझा कैसे जाता। इसी समाज में ही तो..."माई-माई कहि के लुगाई करि लेतु हैं।" और 'बहिनजी, देवी जी" के नारे बुलन्द करने के बाद प्रेयसी बनाने को कौशल की पराकाष्ठा समझते हैं। ऐसों की भी कमी नहीं रह गई है जो ". .मात्र रह गई नारी" वाले सिद्धान्त के कट्टर प्रचारक हैं। (पर तभी तक जब तक कि अपने घर की स्त्रियों, कन्या-बहनों पर दूसरों की वैसी ही दृष्टि न पड़ने पाये) ऐसे समाज-सिद्धान्त वाले हमारी शुद्ध, भावनाओं को कैसे देखने

समझने की कोशिश करते और उस समय समाज मे प्रचलित इन जलती-तीखी बातों को न जानने-समझने के कारण मै वैसी सभी बातों से बेखबर रहा।

इस लम्बी यात्रा मे मधु को और मुझे लोगों ने हँसते-खेलते, स्वच्छन्दता से बातें करते देखा। और तरह-तरह की बातें गढ़ लीं। नाना प्रकार की कल्पनाएँ कर लीं। और यात्रा समाप्त होने के साथ ही हम अन-चीते मे ही घातक रहस्यमय बवंडर से घिर गये।

मधु के जन्मदाता पिता और उसके भाइयों ने एक दिन मुझसे आकर प्रस्ताव किया कि जल्दी ही मधु का विवाह कर डालना चाहिए। मैं चौंका। पर जब मधु पर नजर पड़ी तो मैं सोच मे पड़ गया। विवाह के प्रस्ताव ने मेरे सामने मधु के उस सयाने रूप को रख दिया जिसको मैं देखकर भी न देख-समझ सका था। प्रकृति ने अब तक चुपके-चुपके अपना काम जारी रक्खा था।

मधु मेरे शक्तिहीन बुढ़ापे की एक मात्र लकुटिया थी। अकेला सहारा। मेरे स्नेह, वात्सल्य, गर्व, प्रसन्नता का मात्र केन्द्र। जिस हौसल से, जिस आशा-विश्वास से उसे तैयार किया था, उसके कारण वह मुझे प्राणों से अधिक प्रिय थी। मेरे ज्योति खोने वाले नेत्रों की उज्ज्वल ज्योति। मेरे मरु-जीवन के बीच लहलहाती कल्पलता।

मेरे जीवन मे वह इतनी घुल-मिल गई थी कि उसे अलग करना मृत्यु से बढ़कर जान पड़ता था।

पर दूसरा भी भाव था। उतना ही प्रबल। अपने स्वार्थसुख से कहीं अधिक वाँछनीय। वह थी अपनी सबसे श्रेष्ठ संतान के भविष्य के सुखी जीवन की उत्कट-कामना। और सारे जीवन भर संघर्ष करते रहने के बाद आज इस अन्तिम अवस्था मे मैं अपने किसी सुख-स्वार्थ के लिए अपनी प्रिय पुत्री मधु के जीवन को

कुंटकित नहीं करना चाहता था।

जो बातें करनी ही पडेगी, उसमे टालमटोल करना सरासर मूर्खता है। मैने मधु के विवाह के लिए प्रयत्न प्रारंभ कर दिया। उसके सुख-संतोष के विचार से वर मे कई गुण चाहिए थे। हम लोग योग्य वर की खोज सरगरमो से करने लगे। एक वर मिला भी। देखने मे सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित और वैसे सम्पन्न भी। बात चली। वर राजी भी हो गया। पर फिर बाद मे उसके घरवालों ने एकाएक बात पक्की करते-करते साफ नाहीं कर दी।

मुझे बड़ा धक्का लगा। आश्चर्य भी हुआ। मधु ऐसी सर्व गुण सपन्न, सुन्दरी स्वस्थ शिक्षित, कार्यदक्ष कन्या मे क्या दोष है, जो वर पक्ष वाले इनकार कर दे? मैंने पागलों की तरह वर के पिता का पीछा पकड़ा। उसने बहाने बना कर बात टाल दी।

हमने अन्यत्र चेष्टाएँ कीं। वहाँ भी बात पक्की होते-होते इनकार तक नौबत आई। मुझे उत्कंठा, व्यग्रता, व्याकुलता हुई कारण जानने की। और अन्त में सीधे तो नही पर घुमाफिरा कर लोगो ने कह ही तो दिया। और जो सुना उससे मेरे सर पर गाज गिरी। मृत्यु से बढ़कर कष्ट हुआ।

मेरे वात्सल्य-स्नेह को कुत्सित रूप दिया गया। और इसी कारण मेरी दुलारी, सर्वगुण संपन्न बेटी मधु के साथ कोई अपने पुत्र का विवाह करने के लिए तैयार नहीं!

मेरे प्रेम का पाप तूफान बनकर मेरी शुद्ध, सच्चरित्र बेटी के जीवन-जहाज को समाज-सागर मे डुबा देना चाहता है। कैसी विडंबना है। एक ही रात मे पचास वर्ष के और अधिक बुढ़ापे का भार मेरे सर पर लद गया। जीवनी शक्ति अधिक क्षीण हो गई। सोच कैसा घातक होता है!

और मधु! वह मुझे सुखी रखने के विचार से हसती-गुनगुनाती है। पर चिन्ता की चिनगारी उसे अन्दर ही अन्दर सुलगा रही है। झूठी बदनामी भी कितनी शक्ति रखती है।

जोम से विकसित बड़े से बड़े फूलों को मात देनी पड़ी। दले-मले मुरझाये-कुम्हलाये फूलों से भी मीलों आगे बढ़ना पड़ा। बड़ा विचित्र है इन सब का दुःखद रहस्य।

नये बड़े बढ़े आदमी के बड़े बेटे की दुलारी बेटी हूँ मैं। ताजी-ताज़ी अमीरी का जोरदार सुरूर। महमहाते फूलों की रौसो के बीच का नया बँगला। चल निकलने की आशा भरी जमने वाली वकालत की शान की धाक बैठाने की गरज से आधा हिस्सा एकदम नये अप-टू-डेट तरीके पर अंग्रेजी ढंग से सजाया-सँवारा गया था। और रहने वाले शेष आधे हिस्से के सभी तौरोतर्ज पुराने ढर्रे के दकियानूसीपन के नुमायशी नमूने थे। और रहने-सहने, मिलने-जोलने, बात-व्यवहार, रस्म-रिवाज आदि सभी मे इस गंगा-जमुनी नये-पुरानेपन का श्वेत-श्याम, सलोना चटपटा अटपटा अनोखा संगम-सामंजस्य लहरे मारता, मौजे बिखेरता लहलहाय करता। इस खीझ-खुशी ठसक-उमंग भरी बहुरंगी दुनिया मे मैं चहकती-ठिठकती, सहमती फुदकती अनजान तेजी से बेतहाशा आगे बढ़ रही थी।

कहते हैं जो अध गोरी डाकृरिन मेरे जन्म के समय देख-रेख के लिए आई थी, उसने मुझे लाल-खिलौना कहकर अनेक बार चूम लिया था। बाद मे भी मुझे लोग चाँदनी की चमकदार गुड़िया कहते न अघाते। नाक-नक्शा बेहद अच्छा। भौह-ठुड्ढी हजारों में एक। कपोल और माथे की चमक, चिकनाई एवं सुघर बनावट बेजोड़। सुराहीदार गर्दन और घुँघराले, काले, लम्बे मुलायम, रेशमी लच्छे से कातिल बालों का कहना ही क्या! सर से पैर तक सभी अंग साँचे मे ढले और चतुर कारीगर की सुघुक, मंजी, तुली अभ्यस्त अंगुलियो मे सधी पैनी छैनी के कलापूर्ण ढंग पर सावधानी से छाँटे-छीले-माँजे-तराशे गये से एकदम नुमायशी नमूने से भी बढ़ कर। रंग की बात तो उठानी ही ज्यादती

होगी। माघ के महीने के प्रभात की उषा के प्रथम दर्शन की इंगुरी लाली में कार्तिकी पूर्णिमा की बारह बजे सन्नाटे वाली रात मे पूरे जोम से छिटकने-चमकने वाली शुभ्र चॉदनी की छटा के वैज्ञानिक सम्मिश्रण से जो रंग कल्पनातीत ढंग से उपलब्ध हो सकता है, बस समझ लीजिए एकदम वही रंग। और इस सब के ऊपर था हँसमुख स्वभाव। चहकने-थिरकने-फुदकने-कुलकने वाला चंचल मन, माता-पिता का अपार स्नेह। और सभी छोटे-बड़ो का लाड़-दुलार-प्यार। सभी का खिलौना। मन-बहलाव का साधन। मेरे लिए घर-बाहर सभी जगह स्वर्ग-सुख के सामान बे-हिसाब बिखरे रहते। सभी तरह के आनन्द, आदर उत्साह, उमग, मजा, मौज, प्यार, दुलार उमड़-उमड़ कर आते रहते। जैसे मेरे लिये उस समय की दुनिया केवल आनन्द-सुख का एक अनन्त महासागर हो। और उसकी सुखद, सलोनी, मृदु लहरियो पर अनायास तिरती-झिलती मौजे मारती सरसराती बारह समुद्र रूपी वर्षों की असीम कही जाने वाली, धुँधली, नन्हीं, अलक्षित सीमाओ को कब-कैसे और कितनी शीघ्रता से मैंने योंही पार कर कितने पीछे छोड़ दिया, इसका मुझे पता तक न चल सका। और एक सुन्दरी सतत् उत्फुल्ल जल-परी की भॉति मुझे अपने रूप और सुघर अगो के अलौकिक प्रभाव-प्रबलता का पता उस समय चला जब आस-पास के जल-रूपी वातावरण मे प्रतिविम्बित होकर उन (रूप-अंगो) की छटा एकाएक अनचीते मे मेरे नयनों, मन और मस्तिष्क के सामने जोरदार चमक दमक के साथ उपस्थित हुई। और वह भी बड़े ही नाटकीय ढंग से।

मेरे छोटे चचा जान अपने माता-पिता के दुलारे तो थे ही, भाइयो मे सबसे छोटे और चुलबुले होने कारण अपने बड़े भाइयो के भी स्नेह, प्यार रियायतो, माफियों और मनबहलाव के

समुचित पात्र थे। उनकी चटपटी बातें, अटपटे काम, हँसाने रिझाने वाली शरारतें सभी को भातीं, सभी को खिला गुदगुदा देतीं। इसीसे उन्हें हर छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे काम मे किसी न किसी को शह मिली ही रहती। और इसी कारण वे बेहद ढीठ और अत्यधिक मनचले हो गये थे। समझे जाते बे-जोड़ बुद्धिमान, पर पढ़ने लिखने में उनकी तीव्र बुद्धि न जाने कहाँ लुप्त हो जाती। किताबो से शौक तो था, पर केवल उन्हीं से जिनके विषय मनोरंजक हों। कोर्स की किताबो को शायद वे छठे-छः-माशे ही हाथ लगाते। सहपाठी मित्रो की सहायता और सहृदय मास्टरो की लापरवाही भरी मेहरबानी से इम्तिहानो के अवसरों पर उनकी सारी मुश्किलें सहज मे ही आसान हो जातीं। बड़े बाप के बेटे जो थे। पास होना, दर्जा पाना उनके लिये कोई बात ही न थी। हाँ, उनकी पैनी बुद्धि जितनी ही कुंठित हो जाती पढ़ने-लिखने गुण सीखने मे, उतनी ही अधिक तेजी से पैठती खुराफात के कठिन से कठिन कामो मे। स्त्री-पुरुष-बालक-बालिकाओ का मिला-फुसला-बहका-अपना लेना उनके बाये हाथ के खेल थे। उनके पास पैसो का बल भी था और अपनी लच्छेदार, रसीली बातो और खुशामद भरी चालो का भरपूर जोर भी। दाव-पेच ऐसे मंजे हुए थे कि बड़े-बड़े उस्ताद उनके सामने मुँह की खाते, झखमारते रहते। उनके हथकंडो मे पकड़कर कठपुतली की तरह नाचते-थिरकते। और सीने पर पत्थर क्या पहाड़ रख कर मुझे कहना पडता है कि इन्हीं पैनी अक्ल वाले हरफन मौला चचाजान की खास इनायत से ही मुनासिब वक्त के बहुत पहले ही मुझे रस-रंग भरी अलबेली दुनिया की भूलभुलइयो में अनजाने ढंग से दाखिल होना पडा और आजतक उन रस-विष भरी उलझनों से मेरा छुटकारा न हो सका। और इन्हीं पारखी, जौहरी, गुण-रसग्राही तीव्रबुद्धि वाले चचा साहब की पारदर्शी

रसीली आँखो के आबदार दर्पण में मुझे अपने अलौकिक रूप लावण्य की अद्भुत छटा को असमय मे ही देखने समझने का अचल सौभाग्य प्राप्त हुआ।

बसन्त की बहार शुरू हो गई थी। हमारे बंगले के बगीचे के फूल मस्त खुशबू से अजीब उमगो वाला वातावरण उपस्थित कर रहे थे। आमो की बौरो की तीखो सुगन्ध नासिका, मन और अन्तरात्मा को इस भूतल पर ही स्वर्ग के अनुपम सुख की आत्म-विस्मृतकारी अनुभूति का रसास्वादन कराने मे पूर्ण रूप से सफल हो रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की सुनहली किरणें संसार को सुनहला रूप देकर एक नवीन मस्ती की दुनिया की सृष्टि कर रही थी। ऐसे ही मनभावन अवसर पर मै अपनी एक हमजोली सुन्दरी सहपाठनी सखी के साथ फूलों की रौसों के बीच फुदक रही थी। हम दोनो में बातें भी चल रही थी और हँसी-मजाक के फव्वारे भी छूट रहे थे। हम अपने में इतनी मदहोश थीं कि हमे दीनदुनिया की सुधबुध तक न थी। ठीक ऐसे ही समय मे बगल की लता-ओट से मुझे चचाजान का सुरीला कंठ-स्वर सुन पड़ा। वे मेरी सखी को संबोधित कर कुछ मीठे-मीठे शब्द कह रहे थे। हम दोनों चौंकीं और झिझकीं संभलीं। और इतने में ही चचाजान हमारे सामने आ धमके।

मुझे उनका इस समय का ऐसा बेढंगा आना कुछ ज्यादा न रुचा, क्योंकि मैंने देखा, उनके शब्दों के कान में पड़ते ही मेरी सखी सहम-ठिठक कर गुमसुम-सी हो रही। उसके ओठों पर की बरबस बात-बात में बिखर पड़ने वाली बेमोल हँसी अनायास ही सूखकर उड चुकी है। उसके सुन्दर, सलोने, आकर्षक मुख पर अपने आप अठखेलियां करने वाली प्रसन्नता की आभा लुप्त हो गई है। उससे श्वेत-श्याम-रतनारे, अनियारे, आकर्ण विस्तीर्ण दीरघ नयनों में से सहज उत्फुल्लता-चंचलता मुरझाकर

विलीन हो गई है। मलया निल-सी उन्मुक्त भाव वाली मेरी सखी एक बद्ध हरिणी सी भयविह्वल और अनमनी हो उठी है। जैसे जेठ की दुपहरिया के सूरज के तेज के सामने मृदु कमिलिनी म्लान हो रही हो। मुझे बड़ी ठेस लगी। वह मेरी सबसे अधिक प्रिय सखी थी।

पर उधर चचाजान की स्थिति एकदम दूसरी ही थी। वे उसे सामने पाकर पूरी तरह से खिल उठे थे। जैसे प्रथम किरणों के सामने कमल की कली। उनका गोरा, भरा, सुन्दर चेहरा सुर्खी आभा विकीर्ण करता चमक रहा था। लाल डोरों से सुसज्जित आँखें खुशी से नाची-नाची पड़ती थीं। ओठो से मधुर मुस्कराहट बरबस फूटी पड़ती थी, और उनके सुन्दर, श्वेत दाँतो की मोती सरीखी आब छिटकते-छिटकते कभी बन्द होने लगती और फिर दूसरे ही क्षण जोर से बिखर पड़ती है। वे बहुत दिनो से मेरी उस सखी के लिए तड़प रहे थे, उसके बोल सुनने के लिए तरस रहे थे, उसे पास से देखने के लिए व्याकुल हो रहे थे। इतने लम्बे अरसे के बाद मन की मुराद पूरी होते देख, उनका इतना बाग-बाग होना अनहोनी बात न थी। असल में उन्ही के प्रोत्साहन से ही तो मैंने इस सखी से मेलजोल बढ़ाया था, उससे घनिष्ठता प्राप्त करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया था, उसको अपने दिल के नजदीक लाने के लिए क्या-क्या न करना पड़ा था। पर जैसे-जैसे मेरा उसका अपनत्व बढ़ता गया, वैसे ही वैसे मैं उसके गुणों पर मुग्ध होती गई और उतनी ही तेजी से चचाजान के मंतव्यो को भुलाकर मैं खुद अपने लिए ही उससे मित्रता का भाव बढ़ाने लगी।

पहले तो मुझे इस सखी के साथ मेल-जोल बढ़ाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पडा। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता कि मैं उससे मिलने-बोलने की जितनी ही अधिक व्यग्र चेष्टा

करती, उतनी ही वह मुझसे दूर दूर भागने के प्रयत्न में रहती। कभी-कभी तो वह मेरी अपनत्व भरी बातो को सुनी-अनसुनी कर मेरे पास से उपेक्षा दिखलाती हुई हट जाती। मुझे बड़ी ठेस लगती, बड़ा आघात पहुँचता, अपमान-तिरस्कार से मैं तिलमिला उठती। पर कुछ दिन बीतने पर एकाएक मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि आखिर वह मेरे साथ वैसा कठोर, उपेक्षापूर्ण अपमान जनक व्यवहार करती ही क्यो है ? मैं यह देखती कि अन्य बालिकाओ के साथ तो उसका व्यवहार-बर्ताव बहुत ही मृदु, स्नेहपूर्ण और आदर-अपनत्व भरा रहता है। फिर मेरे प्रति ही क्यो ऐसा अनोखा भाव वह रखती है। और उसके प्रति मेरे मन मे जो एक अव्यक्त आकर्षण था उसने मुझे कोंच-कोंच कर इस गूढ़ रहस्य का पता लगाने के लिए उत्तेजित किया। मैंने उन बालिकाओ से मेल-जोल बढ़ाया, जो उसकी अंतरंग सखियाँ थीं। और उन अंतरग सखियो के अन्तरतम मे पैठने पर मुझे पता चला कि मेरे चचा जान ने कुछ ही दिन पहले एक ऐसी लड़की को फँसाया, फुसलाया, अपनाया, ठुकराया था, जो उसकी बहुत ही प्रिया सखी थी। और उन दोनो को विश्वास हो गया था कि चचा जान की उन सारी करतूतो में मेरा भी गहरा हाथ था। अस्तु, जब मैंने इस सखी से अपनत्व बढ़ाना चाहा तो उसे शक हो गया कि यह सब चाल मेरे आशिक मिजाज चचा जान की ही है, मै उन्ही के इशारो पर नाच कर लासा लगा रही हूँ। बस, फिर क्या था। चिड़िया चौकन्नी हो गई। वह लासे से दूर ही रहने मे अपनी कुशल समझने लगो। पर मैंने भी ठान ली कि चचा जान के लिए तो नहीं, पर अपनी आन-बान-शान लिए तो जरूर ही उस मानिनी से घनिष्ठता स्थापित करना मेरे उस सुनहले जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। और बड़ी बड़ी

कोशिशों के बाद अन्त में मैं उसको अपनी सबसे प्रिय और विश्वासमयी सखी बना कर ही शान्त हुई। उसका मुझ पर अटूट विश्वास हो गया। वह मुझे इतना अधिक चाहने लगी कि बिना मेरे उसे कल न पड़ती। हम दोनो जितना अधिक हो सकता साथ ही साथ रहतीं, मिल कर काम करती।

पर चचा जान से बचाने के विचार से मैं उसे भूल कर भी अपने यहाँ न बुलाती। वह भी सब कुछ भली भाँति समझती जानती थी, इस कारण वह भी चचा जान से बचने की हर तरह से चेष्टा करती। उसकी रक्षा करने के लिए मुझे अपनी अन्य सखियों की बलि चचा जान के रसीले कदमों पर चढ़ानी पड़ी। और कुछ दिन तक तो मैं अपनी प्रियतम सखी को चचा जान के फंदों से साफ बचा कर निकाल ले गई।

असल मे तीव्र बुद्धि वाले चतुर चचा ने छुटपन से ही मुझे अपने कुचक्र का एक जोरदार पुर्जा बना रक्खा था। और सच तो यह है कि मैं उनके सब से अधिक तीक्ष्ण अस्त्र का काम देने लगी थी। एक प्रकार से अमोघ अस्त्र हो गई थी। जब किसी लड़की पर उनका और उपाय न चलता तब वे मेरे जरिये उस पर विजय प्राप्त करते। और असल मे मेरे इस प्रकार के उपयोग का पता उनको तीव्र बुद्धि ने उस समय लगा लिया था, जब मैं केवल तीन बरस की ही थी। इतिहास केवल सुना-सुनाया है, पर है प्रमाणिक ही। उस ऐतिहासिक युग मे चचाजान नई उड़ानवाली उम्र के चमकीले आसमान मे लहरा रहे थे! सारा वातावरण उनकी रसीली नजरों मे मधुमय गुलाबी सुनहला था। मेरे नये पैसे वाले माता-पिता ने ज्यादातर शानशौकत के लिहाज से और कुछ-कुछ सुख-सुविधा के तकाजे के सबब से मेरे लालन-पालन, देख-रेख, खेल-तमाशे के लिए एक धाय और दो छोकरियों को नौकर रख छोड़ा था। नवीन उमंगों वाले चचा

जान की तेज़ नजर उनमें से एक छोकरी पर जा पड़ी। फिर तो उन्होने पैसो से जोर पर उसे अपने हथकंडों पर चढ़ा ही लिया। और उसी सरल सफलता ने उनकी तीव्र बुद्धि को बता दिया कि अपने साधारण मनबहलाव के साधन वे अनायास ही मेरी सेवा-टहल, देख-रेख करने वाली नौकरानियों-छोकरियों के द्वारा जुटा-प्राप्त कर सकते हैं। फिर तो उनके तेज दिमाग ने समय-समय पर मेरी धायों, नर्सों, डाकृरानियो, अध्यापिकाओ, सखियो सहपाठनियों, मेल-जोल वालियो के रूप में अपने राग-रंग के साधन जुटाने शुरू किये।

जब मैं कुछ बड़ी हुई तो चचा जान ने मुझे एक खास स्कूल मे भरती करा दिया। वहाँ सिर्फ खास-खास बड़े आदमियो की लड़कियाँ ही दाखिल की जाती थी। खर्च ज्यादा था और पढ़ाई आदि का बे-जोड़, खास इन्तिजाम। वहाँ चचा जान के मनबह-लाव के साधन भी औसत दर्जे से कही ऊँचे मिल सकते थे। मैं उस समय दुनियादारी की बातें समझने लायक न थी। केवल इतना देख-सुन-जान-समझ सकती थी कि चचा जान मेरी पढ़ाई, लिखाई, लालन-पालन मे बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। वे प्रायः नित्य ही मुझे देखने और मेरी पढ़ाई, लिखाई, सुख-सुविधा की जाँच पड़ताल करने मेरे स्कूल में पहुँचते रहते और अध्यापिकाओं, बालिकाओ से दिल खोल कर घंटो हँसते-मुस्कराते बाते करते रहते। मुझे भी पैसा और चीजों-पदार्थों की खूब ही प्राप्ति होती रहती। मैं मगन रहती, स्वच्छन्द चिड़िया की तरह फुदकती रहती। और चचा जान भी मेरे स्कूल मे तथा घर पर मेरी सेवि-काओं, धाय-छोकरियों के आस-पास मँडराते हुए प्रसन्नता से गुनगुनाते रहते। बड़ी मौज से बीत रहे थे वे दिन। इसी बीच एकाएक एक दिन मेरे स्कूल के एक ऊँचे दर्जे में पढ़ने वाली एक काफी बड़ी अध-गोरी छोकरी से मेरे चचा की न जाने कैसी

क्या कहा सुनी हो गई। मामला शायद बड़ी मेम साहबा तक या उनसे भी ऊपर जा पहुंचा। फल यह हुआ कि मेरे चचा का स्कूल मे आना-जाना बन्द हो गया। उस दिन चचा का उतरा हुआ चेहरा देख कर मुझे रोना आ गया। वैसा उदास भाव तो चचा के मुख पर शायद मैंने उसके पहले कभी और न देखा था। मैं उनकी गोद में जाकर रो पड़ी। उनके भी शायद आँसू निकल आये। पर उन्होंने मुझे समझा दिया कि इस बात की चर्चा घर पर किसी से न करना। मै तो उनके वश मे थी। मैंने किसी से एक अक्षर तक न कहा। किन्तु मुझे एक माह बाद खुद उस स्कूल को छोड़ते समय बड़ा क्लेश हुआ। वहाँ की कई अध्यापिकाओं और बहुत सी लड़कियों से मेरा मन खूब मिल गया था। उनसे बिछुड़ते हुए मैं व्याकुल हो उठी। किन्तु मजबूरी थी। चचाजान को उस स्कूल मे मेरा और अधिक रहना हानिकारक समझ पड़ने लगा। और उन्हीं पर मेरी पढ़ाई और देख-रेख का सारा भार था। जो वे करते मेरे लिए वही होता। मै उस स्कूल को छोड़ कर दूसरे स्कूल मे भरती हो गई। मेरे स्नेही चचा जान इस स्कूल मे भी बराबर उसी प्रकार आने जाने लगे। और किसी न किसी छोटे-बड़े कारण से चार पाँच साल मे मुझे एक-एक कर कई स्कूलों को बदलना पड़ा। हर बार चचा जान खुद सारा प्रबन्ध करते और दूसरे ही दिन नये स्कूल मे नई-नई सुन्दरी सखियो के बीच मैं अपने को स्वच्छंद बिचरती पाती। और समय के साथ ही मुझे अनेक रहस्यों का पता अपने आप आसानी से चलता गया, चचाजान के बहुत से कामों मे मनबेमन सहायता देनी पड़ी, अपनी उम्र से कहीं अधिक आयु की बालिकाओं से नाता-रिश्ता जोड़, चचा जान के रास्ते साफ करने पढ़े। और चचा जान बदले में आवश्यकता से कहीं अधिक रुपये-पैसे देते, मेरे नित-नये बढ़ने-बदलने वाले

खर्चीले शौकों की पूर्ति खुशी से करते और ऐसी-ऐसी सुन्दर बहु-मूल्य वस्तुएँ लाकर देते, जिनकी कल्पना तक साधारण लड़की तो कर ही नहीं सकती, कभी-कभी मैं भी उन चीजों के पाने का गुमान तक न करती। चचा का व्यवहार भी ऐसा मधुर था कि मैं वैसे भी उनकी गुलाम-सरीखी बन गई थी। मैं हर तरह से उनके इशारों पर थिरकती रहती। उनके कहने से मैंने न जाने कितनी अध्यापिकाओं, नर्सों, बालिकाओं आदि का परिचय उनसे कराया, अनेकों झिझकने वालियों की झिझक दूर की, मुकरने वालियों को राजी किया, रूठने वालियों को मनाया-फुसलाया। पहले मैं ज्यादातर दुनियवी बातें बिल्कुल न जानती-समझती थी। जो कुछ भी करती चचाजान के कहने समझाने से केवल उन्हें खुश करने के विचार से ही। मुझे इस बात से खुशी ही होती कि चचा जान का परिचय करा रही हूँ। मेरी बचपन भरी नजरों में उस समय चचा जान से बढ़ कर अच्छा व्यक्ति संसार में और दूसरा था ही नहीं। उनसे रुपये, आवश्यक वस्तुएँ जो इतनी ज्यादा तादाद में सहज में मिलती रहतीं। किन्तु बरसों के साथ ही मुझे दुनिया की कुछ रहस्य-मयी गुप्त बातों का पता चलता गया। मेरे बचपन के भोलेपन का आनन्दमय अज्ञान धीरे-धीरे अपने आप दूर होता गया। उस समय आस पास घटने वाली विचित्र घटनाएँ पहले मुझे अनोखी और आश्चर्यजनक जान पड़तीं, केवल नयेपन के कारण, अनुभव हीनता के बल पर ही। पर बाद में ज्ञान के बढ़ने के साथ ही मुझे यह देख-जान कर आश्चर्य होता कि वैसी बातें तो जीवन में सभी के साथ सभी स्थानों पर नित्य ही होती रहती हैं। और अन्त में दस बरस की उम्र होते न होते चचा जान की प्रायः सभी गूढ़ बातोंका अर्थ मैं दुनियादारी की भाषामें साफ-साफ लगाने-समझने लगी। तो भी मैं उनके व्यवहारों, बातों, उदार-

ताओं और सद्भावनाओं के कारण उनकी उसी प्रकार मदद करती रही जैसी कि दुनियावी ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व खुशी से करती आ रही थी। मेरे भी तो सभी काम ज्यादातर उन्हीं की कृपा दया ममता आत्मीयता ततत्परता उदारता के कारण होते। बस, मैं पूर्ववत् सभी काम करती रही।

किन्तु इस नई सखी ने मेरे जीवन मे आकर एकदम कायापलट कर दी। चचा जान उससे मिलने-बोलने के लिए तड़प रहे थे, पर मैं जान बूझ कर उनसे उसे बचाने का प्रयत्न अपनी शक्ति भर कर रही थी।

समय किसी के लिए रुकता-ठहरता तो नहीं। चचा के तड़पते-खीझते-तिलमिलाते-उफनते-अकुलाते रहने पर भी समय तो बीतता ही गया और मेरा प्रेम इस सखी से बढ़ता ही गया। अन्त मे वसन्त के उस मनहूस दिन को वह मेरे बाग मे आ ही गई। सो भी बिना बुलाये ही, बिना सूचना के ही। वह इस ओर से एक रिश्तेदारी में जा रही थी। कारण वश मुझसे उससे कई दिनों से भेंट नहीं हो सकी थी। वह मेरे लिए तड़प उठी, मैं उसके लिए व्यग्र हो रही थी। इस ओर आने पर उसके प्रेम ने जोर मारा और चचजान के भय को एक ओर ठेल कर वह मेरे यहाँ आ ही धमकी। संयोग से उस समय चचा जान कहीं बाहर गये हुए थे और दो घंटे तक उनके लौटने का वैसा कोई भय न था। हम दोनो एक प्राण दो शरीर हो आपस मे घुलघुल कर मीठी-मीठी बाते करने लगीं। कुछ क्षण तक तो मुझे चचा जी के आने की चिन्ता का भान रहा। किन्तु कुछ ही समय बाद मैं अपनी सखी के सरस स्नेह, मधुर आलाप और मनभावन भावभंगियो के आगे सब कुछ भूलभाल गई। न चचा की सुध रही, न दुनिया का ख्याल। और ऐसे ही बेसुधी ये आलम में सहसा चचा जान के मधुर-वक्र-कठोर स्वर ने हमारे ऊपर गाज

सी गिरा दी। मैं चौंक पड़ी, मेरी सखी भयविह्वल हो उठी। उसका पहला काम था एक विशेष दृष्टि से मेरी ओर ताकना। एक सेकेंड के लिए उसके मन मे यह आशंका उत्पन्न हो गई थी कि शायद मेरी शह से चचा जान उस पर फंदे डालने के लिए आ झपटे हैं। पर वह संदेह केवल एक क्षण ही रहा। उसने मेरे नयनो मे जो व्याकुलता, व्यथा, आश्चर्य, रक्षा की उत्कट भावना देखी उससे उसे मेरे प्रति कोई संदेह न रह गया। हम दोनो मिलकर चचा जान के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए कमर कसकर तुल गईं। फिर तो चचा की एक भी चाल काम न दे सकी। कुछ ही क्षणो मे उनके सभी अस्त्र-शस्त्र को व्यर्थ कर मेरी सखी वहाँ से विजयी वीर की तरह सर ऊँचा किये जल्दी-जल्दी चली गई। मैं दूर तक, कम से कम बागीचे के बाहर तक पहुँ-चाने जरूर गई।

और शायद उस समय सखी के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलना ही मेरे लिए काल हो गया।

जब लौट कर आई देखा, चचा जान फूलों की एक क्यारी के पास खड़े मुझे एकटक देख रहे हैं। उस समय उनके चेहरे पर, उनकी आँखों मे पराजय की झुँझलाहट और पक्षी के हाथ पर बैठ कर सहसा फुर्र से उड़ जाने की खीझ को देखने की आशा से मैने उनकी बड़ी-बड़ी आँखो मे अपनी आँखे डालीं। पर वहाँ तो जो-जो मैंने देखा, उसने मुझे सहसा चौंका कर आश्चर्य मे डाल दिया। वे मुझे उन्हीं भावों से निरख रहे थे, जिनसे अभी कुछ ही सेकेंड पहले उन्होंने मेरी उस अनोखी सखी को लखा था। तो क्या ..? मैं सिहर उठी।

कैसे बतलाऊँ कि आगे क्या-क्या अघटित, असंभावित, अकल्पित, अकथनीय, अघोर घटनाएँ घटी। कलम से केवल इतना ही निकल सकता है कि उस समय मेरी सखी से मात

खाने के खार ने चचा जान को एक दम बौखलाकर अंधा, पागल और बदला चुकानेवाला खूँख्वार घायल शेर बना दिया था। शिकार तो पंजों के बीच से साफ निकल चुका था। अब सारा गुबार निकल सकता था शिकार मे मदद न देने वाली पर ही। किन्तु ठीक उसी क्षण उनकी पारखी दृष्टि सखी के साथ साथ चलने वाले मेरे लम्बे, छरहरे, चुलबुले बदन पर भी पड़ी। दई मारे बरजोर अंगो ने मुझे अपनी असली उम्र से कहीं अधिक अवस्थावाली बताने मे ही शायद अपने कर्तव्य की चरम सीमा समझ रक्खी थी। मेरी सलोनी सखी मुझसे उम्र मे कई साल बड़ी थी। पर मेरे बेतहाशा बढ़नेवाले शहजोर अङ्गों ने मुझे उसी के बराबर साबित कर सकने मे पूरी अदालती सफलता पाई। चचा जान भी शायद इतने दिन बाद पहली बार ही एकाएक यह देख-जान-समझ-कर आश्चर्य चकित हो ठिठके कि मैं भी किसी खास किस्म की उम्र तक पहुँच गई हूँ। और इसी भाव ने मेरे रूप-रंग, चाल-ढाल, आकर्षण-माधुय, बात-व्यवहार को एकदम कुछ दूसरा ही रङ्ग दे दिया। मेरे कुसूर के लिए जो सजा होनी जरूरी था, उसका तौरोतर्ज एकाएक साफ बदल गया। शायद चचा को यह देख-समझकर ताज्जुब हुआ कि उनके इतने समीप ही अनमोल, अछूता रत्न मौजूद है, जिसकी आब की ओर अब तक उनका ध्यान ही न गया था। उन्हे मेरे अनोखे अस्तित्व का सहसा भान हुआ। और उनकी रस, विस्मय-प्रसंशा भरी आँखो से मुझे उनके आन्तरिक भावो का पता चला। उनके रूप-कसौटी सरीखे नयनों मे देखी-समझी अपनी छटा। और इस पर मुझे भी तनिक कम आश्चार्य न हुआ।

पहले चचाजान ऐसे शिकारी को भी कम हिचक न हुई। समाज के बंधन-व्यधान काफी प्रबल-प्रभावशाली होते हैं। पर नये-नये फूलों पर मँडराते रहने वाली कुटेव सद्विवेक को धीरे-

धीरे क्षीण से क्षीणतर करते-करते अन्त में उसके तार-तार कर हवा में उड़ा देती है। मैं सगी भतीजी होते हुये भी, थी तो उनकी रस खोजी आँखो के लिए एक विकासोन्मुख सुन्दर, मधुर कली ही। सारे विधि-निषेध धरे के धरे ही रह गये और अन्त में एक दिन ... !!

नये शर्मीले बंधन मे कुछ ऐसी बुरी तरह फँस जकड़ गई कि इच्छा न रहते हुए भी मै नट-बच न सकती। और धीरे-धीरे मुझे भी खुलने-खिलने-विकसने उत्फुल्ल होने के पूर्वाभास मे ही धीमा-किन्तु निरन्तर बिन्दु-बिन्दु बढ़ता जाने वाला सरस स्वाद आने लगा। और कुछ समय बाद मैं पूरे खिले-खुले बड़े से बड़े फूलो को भी मात देने के लिये बरबस तैयार कर दी गई। मैं वैसे भी चचा जान के हाथों की कठपुतली बनी नाचा-थिरका करती थी, अब तो पूरी तरह से उनकी मुट्ठी मे आ गई। और जिस सखी की रक्षा के लिए मुझे अपनी तक बलि चढ़ानी पड़ी, उसे भी, और उसी की तरह अन्य अनेको प्रियतम सखियो की अंजलि चचाजान के सफल सरस चरणों पर अर्पित करनी पड़ीं।

समय तेजी से भागता गया। मै भी बेतहाशा बढ़ती गई। और साथ ही खुलती-फैलती गई मेरे और रसीले चचा जान के बीच की वे रहस्यमयी गुप्त बाते जिनका प्रकट होना किसी के लिए भी हितकर साबित न हुआ। बाप के प्रभाव और यश से वे ढँकी न जा सकीं। पैसो और पद मर्यादा के जोर से उनको रोकने बन्द करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ गईं। उनको अन्य अनेक उत्तम और मान्यरूप देने के प्रयत्न तनिक भी सफल न हो सके।

पहले तो मेरा मुँह दिखलाना कठिन हो गया। पढ़ना छोड़ना पड़ा। आना जाना बन्द हुआ। घर पर आई हुईं स्त्रियो लड़कियों से मिलना बोलना कठिन हो गया। घर बाहर वालो की सहज दृष्टि के सामने पड़ते ही मैं सहम कर सिकुड़ जाती, शर्म

के मारे पानी-पानी हो जाती। मुंह छिपा कर तुरन्त भाग खड़ी होती। मुझे यही लगता कि वे मुझे धिक्कार, तिरस्कार और लांछना की दृष्टि से ही देखती हैं। जीवित रहना दूभर हो उठा। कई बार तो मैंने प्राणान्त करने की चेष्टा तक की, किन्तु जीवन के मोह ने प्रबल पड़ कर मरने भी न दिया। मैं जीवित ही नरक ज्वाला मे जलती हुई किसी तरह दिन काटती रही। सुनहली, मधुमय, स्वर्ग-सुख वाली गुलाबी दुनिया मेरे लिये रौरव नरक से भी भयावह, कष्टकर बन गई।

और चचा जान ? वे तो मर्द बच्चे ठहरे। बड़े बाप के होनहार दुलारे, तेजस्वी, उच्च शिक्षा प्राप्त प्रभावशाली बेटे। उन पर इन बातों का असर ही क्या पड़ सकता था। वे पहले कुछ दिन तो तनिक झेंपे-सहमे और बात टालने के लिए बम्बई चले गये। फिर लौट कर शान से आये और गर्व से सर ऊँचा कर, तैश से सीना फुलाये अकड़ते हुए समाज की छाती को रौंदते-कुचलते मजे से मौजे करते बिचरने लगे। भला मजाल थी किसी भकुए की जो उनकी ओर मुस्करा कर आँख उठा। भर नजर देख-ताक भी सकता ? हवा का एक तेज झोंका आया और उनके हिमालय से अटल अचल उच्च मस्तक पर से होता हुआ बिना कुछ बिगाड़ सकने की जुर्रत किये हुए ही सर से निकल गया। और उनकी रँगरेलियाँ पहले की तरह ही चलती रही।

और अन्त मे उन्होंने अपनी पुर-असर, लच्छेदार बातों से मेरे दिल पर से उस बदनामी के पहाड़ के दबा मारने वाले भार को हटा फेंका। मैं हौले-हौले फिर मुस्कराने, हँसने के साथ ही अठखेलियो वाली रुनझुन रंगभूमि मे उतर आई। मेरे सर पर से भी तीखी झुलसाने वाली हवा के वे तेज झोंके दूर निकल चुके थे। बार-बार आघात पड़ने पर उसके सहने की शक्ति आप से आप आगे आतीजाता है। मैं भी बदनामी की ठोकरो का

सामना करने की अभ्यस्त सी हो गई और अन्त में उन बातों का मुझ पर वैसा कोई विशेष प्रभाव भी न पड़ता। जैसे चिकने घड़े पर पानी ! समुद्र के किनारे की चट्टानो पर लहरो का आघात !!

× × ×

किन्तु हिन्दू समाज मे विवाह के अवसर पर सारी कसर निकाल ली जा सकती है। मेरे विवाह की चर्चा चलाई जाने लगी, और उसी के साथ उस अफवाह का असर साफ-साफ सामने स्पष्ट होने लगा। महीनो क्या, वर्षों भगीरथ प्रयत्न करने पर भी जाति के अन्दर अच्छे घरानो मे सुपात्र के साथ मेरा विवाह ठीक न किया जा सका। पिता, पिता के पिता, ताऊ, बड़े, स्याने सभी परेशान हो गये। वे किसी तरह विवाह के घाट उतार कर मुझे पार लगाने और अपने सर पर के भार को किसी भी दूसरे के सर लाद कर निश्चिंत होने के फेर मे थे। पर समाज और जाति ने उनके मार्ग मे रोड़े अटका दिये। रसीलें चचा जान के ऊपर सभी की कुपित दृष्टि पड़ने लगी। मेरे पिता तो उन्हें फूटी आंखों न देख सकते, पर कोई भी उनका कुछ बिगाड न सकता था। एक तो वे वैसे ही सबसे ज्यादा चलत पुर्जे निकले थे, दूसर अपने देश व्यापी-यश वाले प्रतापी प्रभावशाली चतुर पिता के सब से दुलारे पुत्र होने के नाते कई नामी करोड पतियो के सहयोग सहायता उद्योग से उन्हें हजार-बारह सौ माहवार, देने वाल अच्छे खासे कारबार में लगने-ज़मने का मौका अनायास ही मिल गया। समाज, देश और धर्म की भी वे खुलकर सेवा करते रहते हैं। छोटे-मोटे लीडरो में उनकी गणना है। फिर भला वे किसी से दबें डरें क्यो ? पिता से बार-बार कहासुनी हुई। और अन्त मे चचा जान ने समाज को चमका देने के विचार से एक उच्च शिक्षा प्राप्त युवक से मेरा विवाह करा ही दिया। पर विवाह के साथ ही उस युवक तथा उसके माता पिता, बन्धु बाँधावो को

मेरे सारे भयावह रहस्यो-संबन्धो का पता चला। समाज के भय से नाममात्र के मेरे पतिदेव दूर देश निकल गये और वहीं व्यवसाय-व्यापार मे जा फँसे। और इधर कहने के लिए हम सभी को एक प्रमाणिक पुष्ट आधार मिल गया कि मैं विवाहिता हूँ, ऐसी वैसी नहीं! समाज के बाग-बाणो से इस विवाह रूपी ढाल द्वारा रक्षा तो असल मे हो भी क्या सकती है, पर हाँ, दिखावे के लिए यह ढाल शोभा और तसल्ली का नुमायशी खिलौना जरूर है।

आज भी चचाजान से घर-बाहर वाले वैसे संतुष्ट नहीं हैं। पर कोई भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। और मैं तो खुल कर उन्हीं के यहाँ रहती हूँ। और किसी अन्य रूप में नही, वैसी ही सगी भतीजी की तरह जैसी कि शुरू-शुरू मे थी। हाँ, इस समय मै कई बच्चो की माता हूँ। बच्चे समाज द्वारा माने जाते है उन्हो विवाह वाले पति देव के ही। सब पर यह भी प्रकट होता रहता है कि वे समय समय पर आते है और मैं भी कभी कभी उनकी सेवा मे जा पहुंचती हूँ। पर परदेश में मेरे ज्यादा दिन न रख सकने के कारण विवश हो वे मुझे अमीर चचाजान के पास ही रखना सुविधाजनक समझते हैं। और समाज को कहा ही क्या जाये!! जरूरी निधि-विधान होता रहता है।

चचाजान ने अपनी शादी भी की है। वह भी एकदम अप-टू डेट तरीके पर, औपन्यासिक ढग से, कोर्टशिप और प्रेम-अभिनय रचकर ही। ओर उनके भी कम से कम आधे दर्जन बच्चे बङ्गले को गुलजार-रौशन किये रहते हैं। पर वे अपनी विवाहिता श्रीमती जी को रखते है कडे परदे के पीछे ही। और इस भरी-पूरी, शान्ति सुख वाली गृहस्थी के साथ ही चलती रहती हैं व्यापार व्यवसाय देश सेवा समाजोद्धार उन्नति उपकार के कामों के लिए दिल दीमाग में तरोताजगी लाने वाली तफरीह मनबह-

लाव वाली जीवन की जरूरी रङ्गरेलियाँ, केलिकलाएँ। हर बड़े आदमी के लिए वे जरूरी जो हैं। कामों से ऊबा-थका-बिचका परेशान मन, मस्तिष्क, शरीर भला कुछ न कुछ आनन्दोत्सव तो चाहता ही है। और घर मे वह सब कहाँ नसीब हो सकता है? खास कर हिन्दू समाज के व्यवधानों से जकड़ी गृहस्थी मे। और बिना मनोरंजन के देश, समाज, व्यापार के बड़े-बड़े काम निबाहे ही कैसे जा सकते हैं। और मैं आज भी अपने तन मन जीवन प्राण से आशिक मिजाज चचाजान के सुख-साधन का आयोजन उसी प्रकार करते रहने के लिए मजबूर हूँ।

सदा-बहार की सज़ा

बारह बरस की होने के पहले ही इसका झगड़ा उठ खड़ा हुआ था कि मैं ज्यादा खूबसूरत हूँ या चंचल, अधिक चतुर हूँ या शोख। इसमे तो किसी को भी सन्देह न था कि सब मुझे चाहने-मानने लगते हैं, हर एक पर मेरा जादू चल जाता है। ऐसा शायद ही कोई हो जिस पर मेरे रूप, मेरी बातों, चंचल-अदाओ का अनोखा असर न छा जाता हो, जो मेरा बेदाम-का गुलाम न बन जाता हो। और अनचीते, हौले-हौले आकर छा जाने वाले यौवन के अंकुरित होने के काफी पहले ही मुझे दुनिया-दारी की प्रायः सभी गुप्त-प्रकट बातो की खासी अच्छी जानकारी हो चुकी थी, वह भी नित्य-प्रति के जीवन के प्रवाह की तीव्र-क्षीण गति देख-सुन-समझ कर ही। उसकी कथा रोमांचक है, कोमल है, मधुर है, किन्तु है तीखी टीसों से सराबोर। आज

आठ साल के समय की लम्बी मरहम-पट्टी भी घाव को तनिक भी न भर सकी। घाव हरा है, सदाबहारी सुख-स्मृतियों से सना, सुन्दर-कटु वेदना से ओत-प्रोत।

मैं बालिका-पाठशाला मे पढ़ती थी। साथ मे थी शोभा नाम की मुझसे कोई तीन साल की बड़ी लड़की। शोभा मेरे घर के सामने वाले घर मे रहती थी। देखने-सुनने में वैसे बहुतो से अच्छी ही थी। पर उतनी सुन्दरी तो नही थी, जितनी कि वह अपने को लगाती थी। रूप के गुमान और उठते यौवन की ठसक ने उसके हाव-भाव, चलने-बैठने के ढंग और मिलने-बोलने की तर्ज मे कुछ ऐसी बाँकी ऐंठन का संमिश्रण कर दिया था, जो खुलती कलियो की ताक-झाँक में सतर्कतापूर्ण संचालित रहने वाले युवक भौंरों के मन मे बरबस चुभ जाती और उन्हें केवल इसलिए अपने चारों ओर मँड़राने, छाये रहने के निमित्त विवश कर देती कि इस यौवन गरूरी का मान-मर्दन करना वे अपनी आन-बान-शान को कायम रखने के लिये जरूरी समझ लेते है।

वैसे मेरे साथ अनेक ऐसी युवतियाँ पढ़तीं-खेलतीं थीं, जो शोभा से कही अधिक सुन्दरी थीं। पर उनमे शोभा की-सी रूप गर्विता कोई न थी। और शायद इसी कारण उनमे से किसी मे भी शोभा की-सी आकर्षण-शक्ति भी न थी। उसकी ऐंठ-ठसक लोगों का ध्यान बरबस उसकी ओर खींच देती।

शोभा छुटपन से ही मेरे घर आती-जाती थी। पर इधर जब से उसने अपनी आयु के तेरहवे बरस को सपाटे से समाप्त करने की ठानी, तभी से मुझे ऐसा जान पड़ने लगा, जैसे मेरे बड़े भाई साहब प्रेमकिशोर उसकी ओर विशेष सजग सदय उत्सुक उत्कंठित आकर्षित हो उटे हैं। जैसे वे उसके आने की राह अकुला-अकुला कर आँखे बिछाये हुए जोहा करते हैं। जैसे उसके आते ही उनके हृदय मे उत्साह, आनन्द, प्रेम, विनोद का

फ़व्वारा तेजी से फूट पड़ता है। जैसे वे उससे बातें करते, उसके शब्द सुनते अघाते ही न हो। जैसे संसार का सारा आनन्द, सभी मजा उसी मे केन्द्रित हो गया हो।

जब कभी शोभा न आती, तो भाई साहब तरह-तरह के बहाने बना कर मुझे उसे बुला लाने के लिए भेजते। ऐसे अवसरो पर वे मेरे प्रति बड़ा स्नेह, अत्यधिक ममता दिखलाते, मुझे फुसलाने, खुश रखने के लिए प्रयत्नशील देख पड़ते, पैसे और पदार्थ दे कर मुझे राजी रखते। वैसे वे मुझसे चिढ़े से रहते। मेरे सामने पड़ते ही आँखे चढा लेते।

मुझे भी एक अजीब मजा-सा आता इन सब बातों में। वैसे भी मैं शोभा को बहुत चाहती थी। उसके साथ खेलने, बातें करने और आने जाने मे मुझे बहुत सुख सतोष प्राप्त होता था। अब तो भाई साहब से अपना कोई काम कराना होता, उनसे कुछ लेना होता, उन्हें किसी काम के लिए राजी करना होता, तब शोभा से उनकी भेंट करा देती। बस मेरा मतलब पूरा हो जाता। शोभा के कारण मैं अपनी आयु के दस बरस पार कर सकने के पहले ही दुनियादारी के महासागर के मॅझाने मे काफी होशियार हो चुकी थी। जीवन की प्रायः सभी गुप्त प्रकट बातें मुझ पर खुल चुकी थी। अनेक रहस्यो को आँखो देखा, कानों सुना, सच्चा, प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हो गया था।

शोभा का सम्बन्ध मेरे भाई से काफी गहरा हो गया था। तो भी मैंने देखा, अन्य भौंरो की ओर से वह उदासीन नहीं है। शायद वह उन युवतियो मे से थी, जो अपने प्रशसको की सख्या में नित-नूतन वृद्धि देख सुन समझकर अधिक-अधिक सुख संतोष लाभ करती है। इन अन्य भौंरो मे से दो-तीन उसके घर पर भी आते जाते थे। उन्होने उसके भोले, सहृदय पिता से खासी घनिष्ठता बढ़ा ली थीं। शोभा के घर आ-जा सकने के कारण

इन अन्य प्रशंसकों को अपनी प्रेमिका से मिलने-बोलने में बड़ी सुविधा होती। मेरे भाई भला कैसे पीछे रह सकते थे। उन्होंने भी शोभा के पिता से रब्तजब्त बढ़ाई और कुछ ही दिनों में उनके प्रधान विश्वास-पात्र बन गये। अपने घर पर भाई कोई भी काम न करते, बाजार से कुछ भी खरीद कर ला देना अपनी शान के खिलाफ समझते। किन्तु शोभा के घर पर उनकी वह अमीराना ठसक एकदम गायब हो जाती। वे रेशमी वस्त्र पहने बाजार से तरकारी-भाजी तक खुद ढो लाते, पैसे-पैसे का सौदा-सुलुफ दौड़-दौड़ कर खरीद लाते और घर के सभी छोटे-मोटे काम-काज जरखरीद गुलाम की तरह हँसते-मुस्कराते हुए करते। शोभा के छोटे, हठी भाई को तो वे सदा हाथों-हाथ उठाये रहते। उसे हाट-बजार पार्क-बगीचे, मेला-तमाशे में बहलाते डोलते। खर्च भी वे जी खोल कर करते। भला फिर क्यों न वे शोभा के खानदान भर के कृपापात्र बन सकते ?

किन्तु उनके प्रतिद्वन्द्वी उनसे पीछे न रहे। उन्होंने भी शोभा के खातिर कोई बात उठा न रक्खी। पहले तो भाई ने शोभा को समझा-बुझा कर उस ओर से मोड़ना चाहा। पर जब वे उसमें सफल न हो सके तो उन्होंने चाल चली। मोहल्ले में कुछ इस तरह की बातें फैलवा दीं कि शोभा के सतयुगी भोले भाले पिता के भी कान खड़े हो गये। भाई ने मोहल्ले के कुछ आदमियों को दे-दिला कर अपने प्रतिद्वन्दियों से हाथापाई, गाली-गलौज तक करादी। फिर मौका देख कर शोभा के पिता को समझा दिया कि इस मोहल्ले में शोभा ऐसी सीधी, सयानी, अविवाहिता कन्या को लेकर, ऐसे बदमाशों, उचक्कों, गुंडों के पास पड़ोस में रहना खतरे से खाली नहीं है। सीधे आदमी बेचारे बड़ी परेशानी में पड़े। मामला सुलझता देख, भाई ने दूसरे मोहल्ले में एक बड़ा-सा

मकान ठीक कर लिया, मकान वाले को साल भर का आधा किराया पेशगी दे दिया और समझा दिया कि हर माह केवल आधा किराया माँगा जाया करे। शोभा के पिता पहले महल्ले के प्रति दिन के झगड़े-झाँसे और नित्य की नई बदनामी से बचने के विचार से उस नये मकान मे उठ गये। उन्हे किराया भी कम देना पड़ा। मकान भी पहले से काफी बड़ा और अच्छा मिला। वे भाई का और भी अधिक विश्वास करने लगे।

और उधर नये मकान मे भाई को शोभा पर एक प्रकार से पूरा आधिपत्य-सा प्राप्त हो गया। उन्होने घरोवा बढ़ाने के विचार से औरतो का भी आना-जाना और एक मे खाना-पीना शुरू कर दिया। वैसे तो पहले ही से मोहल्ले के नाते मेरी माता, बहन आदि शोभा की माँ आदि से मिल-भेंट लिया करती थीं, किन्तु अब तो बात ही दूसरी हो गई।

शोभा के विवाह की बात भी जोरो से उठने लगी थी। इस बीच मे उसके सम्बन्ध मे दो-चार बातें और भी इधर-उधर कही-सुनी जाने लगीं। उसके प्रशंसक भी चुप न बैठे रहे। और अपने स्वभाव के अनुसार वह शांत रहने वाली न थी। एक खासी उलझन पैदा होगई। शोभा के विवाह मे ही कल्याण देख पड़ने लगा। सर-गरमी से वर की खोज की गई। भाई ने जब देखा कि अब विवाह किसी तरह रुक नहीं सकता, तो उन्होने फिर एक चाल चली। बड़ी दौड़-धूप के बाद उन्होने अपने एक बहुत पुराने स्कूल के एक साथी को खोज निकाला, जो शोभा की ही जाति का था और था तनिक ज्यादा कुन्द-ज़हन। उसके साथ सामाजिक रूप से बंध जाने पर भी शोभा पर भाई का ही एक तरह से पूरा अधिकार रह सके, इसी के लिए सारी बन्दिश की गई थी। इस बार भी भाई की जीत रही। जल्दी दूसरा कोई अच्छा घर-वर न मिल सका। भाई ने भी चारों

तरफ से हर तरह से भर-पूर जोर डलवाया। अन्त मे मोहन के साथ शोभा का विवाह हो गया। भाई ने विवाह मे पूरा योग दिया—काम मे भी और कुछ खर्च मे भी। शर्त पहले से ही करा ली गई थी कि शोभा उसी शहर मे रक्खी जायेगी।

विवाह हो गया। समाज से सार्टिफिकेट मिल गया। अब वैसा कोई भय विशेष न रह गया। मौके के लिए एक ढाल तैयार कर ली गई। रूप-गर्विता शोभा अब खुल कर खेल सकती थी। वैसी विशेष चिन्ता न रह गई थी।

विवाह के बाद शोभा की माता बीमार पड़ी। मरने-जीने का सवाल उठ खड़ा हुआ। भाई तो ऐसे मौके की ताक मे थे ही। उन्होंने जी-जान से दवा-दारू और सेवा-सुश्रूषा की। माता मृत्यु के द्वार से लौटा ली गई। और भाई का उपकार, प्रभाव, एकाधिपत्य शोभा के घर पर अटल रूप से छा गया। शोभा की माता की जबान यह कहते न थकती कि कला के भाई ने ही मेरे प्राण बचाये हैं। भाई के मन की मुराद पूरी हुई। कुछ दिन तक शोभा सर्वतोभावेन उन्हीं की हो कर रही। और उन्हे चाहिए ही क्या था!

शोभा के विवाह और उसकी माता की बीमारी मे मेरा परिचय एक नवीन व्यक्ति से हुआ। और इस परिचय ने मेरे भविष्य को ही कुछ-का-कुछ कर दिया।

विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं, घरोवे के नाते हम सभी को शोभा के घर आना और विवाह की तैयारी में हाथ बटाना पड़ता था। वैसे भी मैं अक्सर कई-कई दिन तक शोभा के ही घर रह जाती थी। एक दिन जब मैं अपने घर से शोभा के यहाँ आई, तो द्वार पर से ही जोर के ठहाके सुन पड़े। आगे बढ़ने पर शोभा की छोटी बहन सोना से टक्कर होते-होते बची। वह पागलो की तरह हँसती, आँधी की तरह सपाटे से कहीं बाहर

जा रही थी। मैंने उससे पूछा—'आज क्या है? ऐसी उतावली किस लिए? यह बेतौल हँसी किस कारण से?

तेजी से गली के मोड़ पर पैर बढ़ाती हुई वह कहती गई—'सदाबहारी जी आये हैं। उन्हीं के लिए........।'

आगे मैं कुछ न सुन सकी। उत्सुकता के कारण मैं भी पैर बढ़ाती हुई ऊपर जा पहुँची। देखा, एक व्यक्ति बीच मे बैठा ज़ोर से हँस रहा है। उसे घेरे सब लड़के-लड़कियाँ-घर की औरतें बैठी हैं। बातें चल रही हैं, और उन से भी कही तेजी से चल रही है जोर की हँसी। शोभा भी उस मंडली मे थी।

सदा-बहारी जी के सम्बन्ध में इसके पूर्व भी मैं बहुत कुछ सुन चुकी थी। वे शोभा के नजदीकी रिश्तेदार थे। बड़े हँसोड़, खूब जी खोल कर खर्च करने, खाने-खिलाने वाले, मौजी-जीव। बालक-बालिकाओ के लिए तो वे आकर्षण का अक्षय केन्द्र थे। उनकी बातो से बालक-बालिकाएँ तो क्या, प्रौढ़ स्त्री-पुरुष तक हँस पड़ते। उनके लतीफो मे, लच्छेदार बातो मे सभी को मजा आता।

सालो से यदि लेखा-जोखा सुलझाया जाय तब तो कहना पड़ेगा कि बहारीजी अपनी जोम के उतार पर हैं, पर उनके शरीर की बनावट, उन के मुख की कान्ति, उनकी चाल-ढाल-तौर-तर्ज से स्पष्ट था कि वे अपनी जवानी के चढ़ाव पर ही हैं। फिर उनके स्वभाव का तो कहना ही क्या है। ऐसा जिन्दा-दिल हजारो में खोजने से भी शायद ही मिले।

विवाह के दिनो मे मुझे भी सदाबाहरी जी के निकटतम संपर्क मे आने का अवसर मिला। मैंने उन्हे खूब देखा-परखा-समझा। और शायद उन्होने भी मुझे जाँचा-तौला-कसा-आँका। और विवाह समाप्त होने के पहले ही हम दोनो एक दूसरे के

बहुत ही निकट जा पहुंचे। बिना प्रयास ही, बनावटी उपायों के अभाव मे भी।

विवाह के छोटे-बड़े सारे काम एक प्रकार से मेरे और बहारी जी के ही द्वारा पूरे किये गये थे। अन्दर के प्रायः सभी काम मुझी को दौड़-दौड़ कर करने पड़ते। और बाहर के कामो का पूरा भार आ पड़ा था बहारी जी के ऊपर। इसी कारण हम दोनों बहुत ज्यादा मिल-बोल सके थे। और एक दूसरे को समझने में तनिक जल्दी भी हो गई थी।

विवाह के बाद शोभा की माता की बीमारी में भी बहारी जी ने रात-रात भर जाग कर और दिन-दिन भर दौड़-धूप करके दवा, देख-रेख आदि की व्यवस्था की थी। किन्तु मेरे भाई सदा बीमार माता के आस-पास मँडराते रहते थे, और बहारी जी अपने कामों का ढिंढोरा नहीं पीटना चाहते थे, इस कारण सारा श्रेय मिला मेरे भाई साहब को।

शोभा की माता के अच्छे होने पर बहारी जी चले गये। और जैसे अपने साथ हँसी-उमंग-बहार की दुनिया को भी समेटे लेगये। उनके जाते ही सारा घर सूना-सूना जान पड़ने लगा। मेरा तो शरीर ही निर्जीव सा लगने लगा। संसार मे जैसे कुछ रह ही न गया हो।

बहारीजी के जाने के बाद मुझे पता चला कि मैं उन्हे कितना चाहने लगी थी। विवाह के अवसर पर और शोभा की माता की बीमारी मे उनके निकट रहने का इतना अधिक मौका मिला कि दिन रात का प्रायः सारा समय उन्ही की बातें सुनने, उनसे बोलने, चुहल करने मे ही बीतता था। किन्तु कार्यों के भँवर में और बीमारी की उलझन मे मैं यह न समझ सकी थी कि मेरे जीवन का तार उनसे कितना अधिक संलग्न हो चुका है। यह तो तब मालूम हुआ, जब वे उस दिन हँसते-बोलते सबसे मिल-भेंट

कर चले गये। आधार-स्वरूप वृक्ष के हट जाने पर जैसे लता भू-लुठित हो जाती है, वैसी ही मेरी दशा हो गई।

मैंने अपनी आयु के तेरहवे वर्ष को पार कर लिया था। अंग अपने आप फड़कने लगे थे। उमगें जोर मारने लगी थीं। रगीन सपने दिन में भी बरबस देख पडने लगे थे। और इन सब पर था स्कूल का आना-जाना तथा शोभा ऐसी खेली-खुली सखियों का साथ।

सदाबहारीजी के संपर्क ने गजब ढा दिया। उनके बिना मैं खोई-खोई सी रहने लगी। किसी काम मे मेरा मन न लगता। कोई बात न सुहाती। मेरी दुनिया लुट-सी गई थी।

शोभा से मेरी यह स्थिति छिपी न रह सकी। उसने मुझसे मजाक मे कहा भी, ताने भी कसे, मिला-फुसला कर हृदय की बात निकालनी भी चाही। पर मैं साफ टाल गई। बहाना बना दिया कि विवाह की थकान और तीमारदारी के बाद की सुस्ती के कारण मुझे कुछ ज्वर सा होने लगा है।

शोभा चिढ़ गई। उसने मेरे भाई से कुछ कहा-सुनी की। भाई ने मेरा स्कूल जाना बन्द कर दिया। मुझे और भी अधिक कष्ट होने लगा।

घर मे पड़े-पड़े सोचते-बिसूरते कई महीने बीत गये। इसी बीच मे शोभा के कई नये व्यक्तियों से प्रेम-पचड़े चले और टूटे। भाई से भी कई बार झगड़े और मेल हुए, नवीन पति से खींचा-तानी चली, रूठना-मनाना हुआ और नये-नये गुल खिले। पर शोभा ने सब का निर्वाह कर लिया। उसके पति ने बहुत कुछ जान समझ कर भी उसका सिक्का मान लिया। भाई ने भी अन्य प्रशंसकों को बीच-बीच मे अवसर देकर शोभा से मेल बनाये रखने मे ही कल्याण समझा। पास पड़ोस वालो को सब देख जान कर भी केवल कभी-कभी चर्चा चलाने मे ही

सामाजिक कर्तव्य पालन की इति-श्री करते रहने में ही मंगल देख पड़ा। और समाज की आलोचना निन्दा की परवाह न करने वाली रूप गर्विता शोभा शान से अपनी चलाती चली गई।

इसी बीच मे सदाबहारी जी का आना फिर हुआ। इच्छा न रहने पर भी मै उन्हे देखने, उनसे मिलने-बोलने के लिए शोभा के घर गई ही। मेरे जाने के पहले ही बहारीजी ने शोभा से मेरी पढ़ाई के बन्द किये जाने की बात सुन ली थी और यह जान कर कि मेरी इच्छा स्कूल में पढ़ने की है, उन्होंने मेरे भाई से बातें की थी। और भाई मुझे फिर स्कूल भेजने के लिए राजी हो भी गये थे।

× × ×

शोभा के घर जाते ही मुझे यह सब शुभ संवाद मिले। बहारीजी के उपकार का भार मेरे ऊपर लद गया। मैं उनके प्रति और अधिक खिच गई।

गरमी के दिन थे। हम सब भोजन करने के बाद खुली छत पर बैठे ताश खेल रहे थे। साथ मे भाई भी थे और थी शोभा भी। सयोग से खेल मे मैं बहारीजी की जोड़ी बना दी गई थी, इससे ठीक उनके सामने बैठी थी और बीच-बीच में उनकी आँखो मे आँखे डाल कर देखना पड़ता था। ऐसे अवसरों पर खेल की उमंग के अलावा एक न जाने कैसा मीठा, गुदगुदी उत्पन्न करने वाला भाव उठता और बरबस मन को मथ डालता। उनकी आँखो से आँखे मिलते ही एक सुरूरसा सवार हो जाता, सन-सनी-सी दौड़ जाती, सिहरन-सी हो आती। बड़ा भला लगता। दिल उछल पड़ता, मुस्कुराहट रोके न रुकती, सारा शरीर पुलक-प्रकंपन से भर जाता। एक बार ताश की गड्डी मेरे हाथ मे से लेते समय उनके हाथ मेरे हाथ से छू गये। बस, मेरा तो अजीब

हाल हो गया। मुझे एक क्षण तक तन-बदन की सुध न रह गई। जैसे मैं सपना देख रही होऊँ। जी उमड़ा पड़ता था। आँखे उनकी सूरत देखती-देखती मुँदी-सी जा रही थीं। सारे बदन मे कँपी-कपी होने लगी थी। हाथ और ओठ हिलने लगे थे। सुरसुराहट-झनझनाहट पोर-पोर मे हो रही थी। सहसा हृदय से एक हूक-सी उठी और सर्र से निकल गई। मै समझ न सकती थी कि हो क्या रहा है। पर यह सब रहा केवल एक ही क्षण। बस, जब तक मे उनके हाथो ने मेरे हाथो को छूकर ताश की गड्डी उठाई, तभी तक मे यह सब अनोखे-सुखद-विह्वलकारी अनुभव हो गये। मैं सहसा उसी क्षण के अन्त मे द्रवित हो गई, फिर जड़ता-सी, तन्द्रा-सी आने लगी...

फिर कुछ क्षण के लिए मैं आपे मे न रही। सहसा किसी ने मुझे जोर से झकझोरा। यह शोभा थी। बहारीजी का भी अट्टहास सुन पड़ा। वे कह रहे थे—'रात ज्यादा गई। नींद आ रही है। बैठे-बैठे ही झपकियाँ लेने लगी?' शोभा भी इसी तरह की कुछ बाते कह रही थी। मैंने अन्दर से जोर लगाया। जड़ता, आलस्य, तंन्द्रा दूर हुई। मैं सजग हो गई। हाथ बढ़ाकर ताश उठाये, और उनका देखने-छाँटने का बहाना कर उनमे समा-सी गई। खेल के नशे मे किसी ने ज्यादा ध्यान न दिया।

प्रायः एक बजे खेल समाप्त कर हम सब सोये। कुछ ही देर में और तो सब खर्राटे भरने लगे, पर मेरी आँखो मे नींद न असकी। छत काफी बड़ी थी। एक ओर औरतें सोईं थीं, दूसरी ओर पुरुष। पर, वैसे विशेष अन्तर न था। ज्यादा कड़ाई भी न थी। घर-ही-घर के सब जो थे। मुझ से कुछ ही फासले पर बहारीजी पड़े थे। बीच में लडको के विस्तर थे। मैं हौले-हौले सरकती उनके बिस्तरो से होती हुई बहारीजी, के बिस्तर के पास आ पहुँची। देखा, वे भी अभी-तक नींद के वश से बाहर ही थे।

मैंने धीरे-धीरे आकर उनके हाथ को अपने काँपते हुए हाथों में लेलिया। व पहले तो झिझक पड़े, पर फिर शान्त हो, नन्हे-नन्हे तारों के क्षीण प्रकाश के सहारे मेरी ओर उत्कंठा से देखने लगे। प्रथम इस प्रकार के कर-स्पर्श के साथ ही उन्हे मेरे वहाँ एका-एक पहुँचने का ज्ञान हो गया था।

देर तक हम दोनों धीरे-धीरे बातें करते रहे। मैं बेताव हो रही थी। पर बहारीजी शान्त थे, दृढ़ थे। मेरी उन्मादपूर्ण बातों को उन्होने बड़े धैर्य से सुना और सब जान-सुन लेने के बाद मुझे बहुत कुछ ऊँच-नीच समझाया, समाज के बँधनो का हवाला दिया, वासना-उत्तेजना के कुफल के परिणामो से मुझे खूब सचेत किया और मर्यादा के अन्दर रहने का उपदेश दिया। मैंने भी जी खोल कर बहुत-कुछ कहा। पर उन पर वैसा कोई असर न हुआ। और उस समय उनके उपदेश का असर मुझ पर भी कुछ न हुआ। और-सच बात तो यह है कि आज भी मुझ पर वैसे किसी भी उपदेश का असर नहीं हो सकता। हृदय से बस नहीं चलता।

सवेरे चार बजे तक हम दोनों धीरे-धीरे बातें करते रहे। बीच बीच मे मैं उनके अंगों का स्पर्श करती और अंकुरित प्रकंपित गदगद विह्वल द्रवित क्षुब्ध अलसित जड़ीभूत प्रसुप्त तंद्रिल शिथिल हो उठती। उभरने वाले अंगो को दबा कर चूर-चूर जीवन मे यह पहला ही इस तरह का अनोखा अनुभव था। सब से पहले यह अनुभव ताश खेलते समय हुआ था। फिर एकान्त मे बातें करते-करते कई बार उसकी पुनरावृत्ति हुई।

मैं उनसे इसके सम्बन्ध मे कहना चाहती थी, केवल यह साबित करने के लिए कि उन्होने मेरे अन्तस्तम में, मेरे मन प्राणों में इतना प्रवेश कर लिया है कि उनसे अलग रहने की कल्पनामात्र मेरे लिये सहज सम्भव नहीं हो सकती। और

उसका प्रमाण है उनके अंगो के स्पर्श मात्र से मेरी ऐसी दशा का होना।

पर किसी प्रकार भी मैं जबान पर उस अनुभव की बात को ला तक न सकी युवती-सुलभ लज्जा हर बार मेरा गला दबा देती।

चार बजते-बजते मेरा वहाँ उन वस्त्रों में रहना कठिन हो गया। लोगों के जागने का भी समय हो रहा था। मैं उठी और जाकर नल के नीचे बैठ गई। देर तक स्नान करने के बाद कहीं जाकर मुझे सन्तोष हुआ।

समय का प्रवाह तो रोका नहीं जा सकता। उस रात के बाद पूरे दो वर्ष बीत गये। अनेक बार बहारीजी से मिलने बोलने के अवसर आये और प्रायः हर बार उनके हाथ के स्पर्श मात्र से मेरी वही दशा हो गई। पहले मैं उन्हें अपने बाहुओं में जकड़ लेने के लिए व्याकुल हो उठा करती थी। पर इस अनुभव के बाद से उनके शरीर से अपने शरीर के और अधिक सपर्क मे आने की लालसा एक प्रकार से शिथिल सी पड़ती जान पड़ती थी। जैसे शारीरिक संपर्क का आकर्षण कुछ समय के लिए समाप्त सा हो जाता।

अनेक बार बहारीजी के साथ सैर-सपाटे के लिए जाने, खेल-तमाशे देखने, स्नान देव दर्शन करने, उत्सव पर्वों मे भाग लेने आदि के अवसर आये। मैं ऐसे अवसरों पर उनके बहुत ही नजदीक रहने, साथ-साथ चलने खड़े होने बैठने की चेष्टा करती, उनके मुख से निकली प्रत्येक बात से रस लेने की चेष्टा करती। उनके स्पर्श मात्र से मुझे वही ताश की रात वाला अजीब मस्ती वाला, सुखद विह्वल कारी अनुभव होता।

हम दोनों को एक दूसरे का अत्यधिक विश्वास और भरोसा था। एक दूसरे के भाव छिपे न थे। पर समाज का ख्याल कर

बहारीजी मन मसोस कर रह जाते। वे समाज के बंधनों को मानने, मर्यादा की रक्षा करने के पक्षपाती थे। किन्तु मैं कभी-कभी आपे मे न रह जाती। उनके साथ खुल कर रहने जाने के लिये हठ करती। वे ऐसे मौकों पर बड़ी खूब सूरती से मुझे समझा बुझा कर शान्त करते।

मेरी दशा शोभा से और उसके कहने से भाई से छिपी न रह गई थी। भाई ने मेरा स्कूल जाना बन्द कर दिया था। बहारीजी से भी मिलने-बोलने मे बाधा डालने लगे थे। और अन्त मे उन्होने मेरा विवाह एक बड़े घर मे तय कर लिया। सब तैयारियाँ होने लगी। मैंने कह दिया कि मैं विवाह न करूँगी। एक काण्ड खड़ा हो गया। शोभा के कहने से तार देकर बहारीजी बुलाये गये। उन्होने आकर मुझे अनेक प्रकार से समझाया।

समाज के बन्धनो को स्वीकार कर मैंने विवाह मे विघ्न न डाला। मेरे सामाजिक पति एक अच्छे खासे लम्बे, तगड़े जवान है। न ज्यादा खूबसूरत और न वैसे बदसूरत ही। आवाज जरा भारी है। शायद पुलिस विभाग का फल है। विवाह के साथ ही मेरी विदा कर दी गई थी। मैं मन मरे ससुराल गई। किन्तु भाग्य खोटे निकले। प्रथम रात ही पति देव ने पुलिस आफिसर वाले रोब-दाब के साथ बहारीजी वाले संबंध के बारे में कैफियत तलब की। शायद विवाह के साथ-साथ ही किसी ने उनके कानों तक बहुत सी बाते पहुंचा दी थीं। मैं सन्नाटे मे आ गई। तो क्या विवाहित जीवन का यही आदि-अन्त है?

बहारीजी ने उपदेश दिया था कि पति ही स्त्री का सब कुछ होता है। उससे कुछ भी छिपाना, कपट रखना ठीक नहीं होता। जीवन को शुधारने, सुखी बनाने के लिये सत्यता का, स्पष्टता का व्यवहार बहुत आवश्यक होता है।

उनके उपदेश के अनुसार मैंने डरते-कॉपते-लजाते-सकुचाते दबी जबान सभी बातें साफ-साफ कह दी।

पर प्रभाव उलटा पड़ा। पतिदेव यह मानने के लिए तैयार न हुये कि मेरा शारीरिक सम्बन्ध आज तक किसी पुरुष से नहीं हुआ है। वे न तो स्वय जॉचने-समझने के लिए तैयार हुए और न डाक्टरी परीक्षा की बात ही उनके पुलीसी दिमाग मे आई। वे किसी बात को सुनने-समझने के लिए तैयार न थे। नादिरशाही फैसला कर दिया गया कि कला कुलटा है, व्यभिचारिणी है। इसे पत्नी के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता।

मेरे सारे भविष्य का फैसला हो गया। मैं मायके वापस भेज दी गई। बात फैलते देर न लगी कि कला के पति ने उसे छोड़ दिया है, क्योंकि वह कुल्टा है।

मैं सुहाग-पूर्ण वैधव्य के दिन रो-खीझ कर, हस-मुस्करा कर जल-तड़प कर काट रही हूँ।

और मेरे पति देव! उनकी न पूछिए। वे तो पुरुष है और है कमाऊ पूत! पुलिस विभाग मे अफसर। विवाह के पहले ही उन्होंने कम से कम एक दर्जन सुन्दरियो को खुल कर रक्खा और छोड़ा था। संगी-साथी भी ऐसे थे जिन्हे बिन मुजरा सुने नींद न आती, तबले की ठनक के बिना कल न पड़ती।

आज भी पार्टी जमती है, नाच-गाने-रग रेलियॉ होती है। बाजारू औरतो के पीछे न जाने क्या-क्या नहीं सहा-किया जाता। पर उनकी बात ही और है। समाज मे इस तरह की बातें जायज जो हैं।

+ + + +

और शोभा? उसकी दुनिया आज भी आबाद है। उसके पति को सब बातो का पता चल चुका है। वह खीझता है,

लड़ता-झगड़ता है। पर शोभा मे शक्ति है, कौशल है; समाज से पति से, प्रशसकों से भली भाँति निर्वाह करते रहने का। मेरे भाई भी अपनी विवाहिता पत्नी को उसके मयके मे बैठाले शोभा की गुलामी बजाया करते है। और उसके अन्य प्रशंसक भी एक दूसरे से खार खाते है, लड़ते-झगड़ते है, पर अन्त मे समझौता करके ही रहते है। समाज सब सहता है।

और एक मैं हूँ। शरीर से एक दम शुद्ध। मन से सच का निर्वाह करने के लिये सचेष्ट। सामाजिक नियमों-बंधनो को मानने के लिए अपने सुख संतोष की भी बलि चढ़ाने के लिये तत्पर। किन्तु समाज के सामने मैं कुल्टा हूँ। पति के साथ रह सकने मे अयोग्य। पहले कुछ दिन तो बड़े क्लेश मे कटे। किसी को मुंह दिखलाने, किसी के सामने जाने की हिम्मत ही न पड़ती थी। चुपचाप हृदय के उद्वेगों को संभालती-सहती पड़ी रहती।

फिर धीरे-धीरे मन बहला। समय ने आघात की पीड़ा कम की। मैं भी शनैः-शनैः अपने को सॅभालने मे समर्थ हुई।

अब हॅस-बोल लेती हूँ मजे मे जीवन यात्रा चल रही है।

एक बात हुई है। मुझ मे भी धीरे-धीरे सदा-बहारी आ गई है। शरीर तेजी से उभार पर आ रहा है। पर शायद भविष्य के सुख-सतोषमय जीवन के नाश की भारी काली कठोर शिला मेरे क्षण-क्षण बढ़ने-उभरने वाले अगो को दबाकर चूर-चूर कर देना चाहती है। और शायद इन्ही दो विपरीत प्रभावों के संघर्ष के कारण मेरे कद मे, मेरे शरीर की गठन में, मेरे अंग-प्रत्यंग मे तेजी से सदाबहारी की अनुपम ओप चढ़ती जा रही है।

मन भी जैसे समाज के बन्धनों-मान्यताओं को स्वीकार करता हुआ भी एक अपरिवर्तन-शील विद्रोह करना चाहता है। उसमें

भी समाज के द्वारा दिये गये कठोरतम दण्ड के प्रति उपेक्षा जनित अजस्र अटूट हास जैसे फूटा-सा पडता है। जैसे अपने लम्बे काले शान्ति शून्य विषादपूर्ण अवांछनीय भयावह भविष्य को भुलाने के लिए उससे त्राण पाने के लिए निरंतर हँसते, किलकते, खिलखिलाते, अट्टहास करते रहने की आवश्यकता प्रतीत हो रही हो।

मुझे अब भाई की चढ़ी हुई पेशानी, लाल सुर्ख आँखो का कोई भय नही लगता। और न पास-पड़ोस वालो की निन्दा भर्त्सना वाली बातो की परवा ही रह गई है। मैंने अपने जीवन का क्रम बना लिया है। उसी क्रम के अनुसार में अपने को तैयार कर रही हूँ।

आठ वर्ष, लम्बे-लम्बे आठ बर्ष बीत चुके। मेरा शरीर पहले से जरा ज्यादा भर आया है। मेरा क्रम जारी है। अब बहुत हँसमुख हो गई हूँ। मनोरंजक बातो के कहने मे बेजोड़।

सदाबहारीजी पूरे जोम पर हैं। और मैं भोग रही हूँ उस सदाबहारी की कठोरतम सजा।

सुनहरे रंग की लूट

'रंग-रूप के कारण मुझे सभी 'सुनहरी' कहते-जानते थे। मैं कैसे कहूँ, पर सच बात तो यह है कि सभी का फतवा था, और निगोड़े आइने का सुबूत कि मेरा रंग तपाये हुए सोने को भी मात देता था। नाक-नक्शा, बनावट-गढ़न, नख-शिख सभी ने मुझे

हजारों में एक बना रक्खा था।

'अभी मैं अपने रंगीले पद्रहवें बरस को पार कर रही थी कि होली के ठीक सबेरे मुझे एक नये मादक संसार का पता चला। उसके उन्मादकारी झंझावात की लपेट मे पड़कर कही-की-कहीं उड़ कर जा पहुंची। यहां उसके एक अंश की झलक दे रही हूँ सुनहरे रङ्ग की लूट के प्रारम्भ की कथा।

'मेरे मकान से मिला हुआ मोहनी के पिता का पुश्तैनी घर था। छते इतनी सटी हुई थी कि मुरेड़ों पर से हम लोग मजे में उचक-कूद कर एक दूसरे के पास जा पहुँचते। मोहनी मुझसे काफी बड़ी थी। उसकी शादी हो चुकी थी, गौना भी। कई दफे वह ससुराल हो आई थी। इस बार उसका देवर मदन उसे पहुँचाने आया था और होली के कारण रोक लिया गया था। इसके पहले भी वह दो-तीन बार आया था, और मोहल्ले के नाते मेरी ऐसी लड़कियो से हँसी-ठठोली के सिलसिले मे उसकी मुठभेड़ हो चुकी थी। वह बहुत ही भोला, संकोची और सीधा था। इस कारण मोहल्ले भर के लड़के-लड़कियो द्वारा उसकी बुरी गत बना करती।

'हमारे शहर मे आमतौर पर और हमारे मशहूर मोहल्ले में खास तौर पर होली जरा ज़्यादा जोर को होती है। बहुत ही धूम धड़ाके की, बेहद गंदी, हद दर्जे के फूहड़पन से भरी हुई। धूल-कीचड़, रग-गुलाल से तबियत ऊब उठाती है, गाली-गलौज, कबीर-फबतियों से कान के कीड़े तक भस्म हो जाते है।

मदन भी यही कोई पन्द्रह बसन्तो की बहारें देख सका था। पर कसरत और खिलाई-पिलाई, निर्द्वन्द चिन्ता-रहित-मस्ती ने उसके रग-रेशों, कल्ले-पुट्ठो को काफी से ज्यादा लम्बाई-चौड़ाई मुटाई-भराई दे रक्खी थी। सांचे मे ढला-सा सुडौल शरीर अठारह से कम का न जँचता था।

'वैसे तो मोहनी के विवाह के समय दो वर्ष पूर्व ही जब मैंने उसे पहले-पहल देखा था, तभी वह मेरी आँखों मे बरबस बस गया था, लाख कोशिश करने पर भी पुतलियों के बीच से काढ़े-न-कढ़ता था, पर इस बार तो मेरा मन उसके लिए बेचैन हो उठा। और इस बार मैंने उसे देखा था सवेरे के धुँधले प्रकाश मे छत पर कसरत करते। वह अपने को अकेला समझ, मौज से लंगोट पहने दंड-बैठक मे मस्त था, दीनदुनिया से बे-खबर, अपने रङ्ग मे सरा-बोर। मैं भी यों ही अपनी छत पर आई थी, एक दम अकेली। बगलवाली छत पर सों-सों को नपी-तुली धुक-धुक सुन कर सहसा आँखें उस ओर जिज्ञासा से फिर गईं। फिर तो जिस दृश्य पर दृष्टि पड़ी, उसने आँखों को, मन को, सर्वस्व को अपनी ओर खींच लिया। पुरुष मे इतना सौंदर्य, इतना सौष्ठव, इतना मादक आकर्षण मेरी आँखों को देखने का अवसर इसके पूर्व कभी प्राप्त न हुआ था। मैं सब कुछ भूल कर मदन से सौंदर्य को एकटक पीने लगी। उस समय मुझे किसी का भान था तो केवल मदन के रूप का, उसके अलौकिक सुगठित अंगों का, उसके रतनारे नयनों का।

'मेरे मन मे, मस्तिष्क मे, शरीर से कुछ ऐसी बातें हो रही थीं जिन का इसके पहले मुझे कभी स्वप्न में भी अनुभव न हुआ था। कैसे बतलाऊँ उन सब बातों, उन सब भावों, उन सब चेष्टाओं, उन समस्त क्रियाओं को। शब्दों द्वारा शायद वर्णन करना संभव भी नहीं है।'

'मैं देर तक अपने आपे मे खोई हुई मदन के रूप-सौंदर्य का रसास्वादन करती रही। समय का मुझे भान न रह गया था, इस कारण कह नहीं सकती कि कब तक मैं वहाँ खड़ी चुपचाप मदन को निहारती रही। अन्त मे उसकी कसरत समाप्त हुई। वह इधर-उधर टहलने लगा। इसी समय मेरे हाथ से अन-जाने में

एक छोटा गमला छू गया और उसके गिरने की आवाज से इधर मै चौंकी और उधर मदन। उसकी नजर सहसा मुझ पर पड़ी और आश्चर्य-चकित की भाँति उसके मुँह से बेतहाशा निकल गया—'ओह! तुम हो!! क्या कर रही थीं? कब से खड़ी थीं?'

'और इधर रूप-रस-मातीं, चकित, चंचल, विस्मय-विस्फारित प्रेमपगीं आँखे सहसा उठीं और मदन की सकोच-विस्मय से परिपूर्ण, सहज-अलस-भाव-भरी उन्मादकारी आँखो से जाकर भिड़ ही तो गईं। और इसके साथ ही बरबस ओठो पर मन्द मुस्कराहट फूट पड़ी, मुख पर लाली फैल गई, अँगो मे कम्पन होने लगा, बदन भर मे सनसनी दौड़ गई। लज्जा-संकोच ने आँखो को एक दम नीची होने और शरीर को वहाँ से एकाएक हटा-भगा कर छिपने के लिए विवश किया। किन्तु अनुराग के प्रथम दर्शन-मिलन वाले सर्व-विजयी आत्म-विभार करने वाले प्रभाव ने मेरे नेत्रो को जहाँ-का-तहाँ उलझा रक्खा, पैरो को जमा-सा दिया, शरीर को गति-हीन कर डाला और मै धड़कते हृदय को थाम्हे एकटक मदन को निहारती रह गई, नयनो से नयन मिलाये, दीन-दुनिया की सुधि बिसराये प्रेम-सागर मे सराबोर।'

'शायद मेरे अनन्त, अप्रतिरुद्ध अनुराग का अचूक असर मदन के नेत्र, हृदय, मन, मस्तिष्क पर भी छाये बिना न रह सका। वह भी टहलना-चलना छोड़, अपने-पराये की बातो को बिसार कर तन्मय हो निर्निमेष दृष्टि से मेरी ओर ताकता रह गया। उसे भी न तो परिस्थिति का भान रह गया था और न आगे-पीछे के फलो-परिणामो का विचार ही, बस वह था, उसकी अपलक दृष्टि, मैं और मेरी जहरीली-कटीली नजर।'

'और अन्तस्तल के सभी गूढ़-गहन भावो को स्पष्ट रूप से व्यक्त-प्रकट करने वाली नयनो की मूक, शब्द-रहित, सूक्ष्म-सम्पूर्ण

भाषा मे हम दोनो एक दूसरे के हृद्गत विचारो-भावो को खूब अच्छी तरह से कह-सुन-समझा-बुझा रहे थे। न मेरे मुँह से एक भी शब्द निकला और न मदन की जबान से कोई बात। पर हम दोनो एक-दूसरे को पूरी तरह से जान समझ गये, बिना कहे ही सब कुछ बतला दिया। नयन-सभाषण का कहीं अन्त ही न जान पड़ता था, तनिक भी सन्तोष न होता था, धारा ही न टूटती थी। और यही लगता था कि इस अमृत-पान का अन्त न हो।

'और हम दोनो का बस चलता तो नयन-मिलन का अन्त होता ही क्यो। पर इस ससार मे भला अधिक समय तक चिन्ता रहित सुख बदा ही किसके भाग्य मे है! हम दोनो प्रेम-लोक के सुखद, आत्म-विभोर करने वाले वातावरण से उछालकर सहसा बाहर फेक दिये गये मोहनी की मधुर, कोमल स्वर-लहरी द्वारा, जो एकाएक दोनो छतो पर आकर गूँज गई थी। मोहिनी मदन को दूध-बादाम के लिए बुला रही थी। मैं तो छलॉग मार कर अपने जीने की सीढ़ियो पर जा पहुंची, जैसे जल पीने वाली मृगी ने पीछे से शेर की दहाड़ सुनकर प्राण बचाने के लिए चौकड़ी भरी हो! और शेर से सीने वाला मदन वही बैठके लगाने लगा। हम दोनो जैसे चोरी करते पकड़े जा रहे हो।

'किन्तु शंका निर्मूल थी। मोहनी को हमारी स्थिति का पता न चल सका। हम दोनो उसके बाद बराबर लुक-छिप कर एक दूसरे के दर्शन-सम्भाषण का आनन्द अपनी-अपनी छतो से लूटने से न चूकते।

'तीन दिन बड़े मजे मे, बडी उमंगो के साथ, मिलन-वियोग के आनन्द-व्यथा मे, नाना प्रकार की रंगीन कल्पनाओ के परो पर लद कर कट गये। चौथे दिन होली जली रात के बारह बजे। मदन को मोहल्ले के लड़के खीच ठेल कर होली तापने ले गये थे। वहाँ उसकी जो गत बनी, उससे उसके होश उड़ गये।

सबेरा होते ही उसकी क्या दशा होगी, इसकी कल्पना ने ही उसके हृदय का दहला दिया! वह हँसी-मजाक से भागता-चिढ़ता न था। पर होली के नाम पर जो-जो भीषण-वीभत्स बातें होने की संभावना थी, वे उसे सह्य न थीं। रात मे ही घर लौट कर उसने घर वालों से कह दिया कि मैं तो अब एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकता। बहुत कहा सुनी के बाद अन्त में यह ठहरा कि वह चुप-चाप एक कमरे मे बन्द पड़ा रहे, घर वाले सबसे कह दे कि वह चला गया, और इस प्रकार होली के नाम पर होने वाली फजीहत से उसकी रक्षा की जाय। रात से ही मदन छत वाले कमरे मे जा छिपा। जीने के और आस-पास के सारे रास्त उसने बन्द कर लिये।'

'अभी उजेला होने भी न पाया था, कि हुल्लड़, गुल-गपाडा शुरू हो गया। मदन के लिये दल के दल धाव बोल रहे थे, पर सभी को निराश होना पड़ा मुझे भी चैन कहाँ! दबे पाँवो छत पर मँडराने लगी। मदन भी चौकन्ना था। होली की गत से बचने और मुझसे चार नजरे करने के लिए वह सतर्क था, व्याकुल था। मेरा छत पर आना उससे छिपा न रह सका। टोह लेकर वह उस ओर आया जिस ओर मै दबकी खड़ी थी। पास आने पर मैने धीरे से हँस कर कहा—'खूब चोर बने हो! अभी मोहल्ले वालो को पता चल जाये तो तुम्हारे ऐसे परदे-की-बू-बू..... !'

'उसने भी हँस कर कहा—वैसे महल्ले के सारे छोकरे मेरा कुछ ज्यादा बिगाड़ नहीं सकते। पर मै धूल-कीचड़-गलीज और कोयले-कोलतार-काजल से घबरा जाता हूँ। व्यर्थ में कपड़ों और बदन की दुर्दशा मुझे अच्छी नही लगती। और इस चिल्ल-पों, गाली-गलौज, बेशर्मी के भाड़पन को तो तुम भी न पसन्द करोगी।'

'इसी समय गंदी-से-गंदी गालियों की बौछार हमारे मकानों के सामने ही होने लगी। मेरी आँखें मदन की आँखों से उलझी हुई थी। बौछार के कान में पड़ते ही अपने-आप मेरी नजर नीची हो गई। शर्म ने अधमरी कर डाला। मदन भी मुस्करा कर तनिक हट गया। मुझे खुशी इस बात की थी कि कई घंटे मदन को अपने-आप स्वीकार की गई इस तनहाई की सजा को भोगना पड़ेगा और इन कुछ घंटो में मै उससे दिल खोल कर मिल बोल सकूंगी कोई विघ्न-बाधा डालने वाला न आ सकेगा। मैं रहूँगी और मदन।'

'मदन के कसरती शरीर को खाने की जरूरत थी। और मैं जानती थी कि न तो रात की उत्तेजना मे इसका उसे ख्याल ही रहा और न होली के मद मे मदहोश घरवालों का ध्यान ही इस ओर जल्दी जा सकेगा। मै कुछ मेवा-मिठाई लाई। मदन ने जिद् पकड़ी कि दोनो साथ ही खायेंगे। हार कर मुझे उसके कमरे मे जाना पड़ा। मजा भी आ रहा था। और झिझक भी हो रही थी। छतो पर से दूर-दूर से तो रोज ही बातें होतीं, पर इतने समीप आने का मेरा यह पहला ही अवसर था। बदन भर मे सनसनी दौड़ जाती, हृदय जोर-जोर से धड़कने लगता, गुदगुदी-सी उठती। मन में पुलक भी उठती और भय-सा भी लगता। कभी मन आगे बढ़ता-बढ़ाता तो पैर सौ-सौ मन के भार से ऐसे जकड़ से जाते कि आगे एक अंगुल न बढा जाता। और कभी पैर जल्दी-जल्दी उठने लगते तो मन पीछे की ओर मुड़ कर भागना चाहता। आँखें खुशी से नाच-सी उठतीं और फिर दूसरे ही क्षण भय-शंका से चंचल हो चारों ओर टोह लेने के लिए घूम जातीं और लज्जा-संकोच के कारण जमीन में गड़-सी जाना चाहतीं। उमंग से चहकने, गुन गुनाने, सुरीली तान छेड़ने के लिए कंठ बेचैन होने लगता; पर

साथ ही कोई सुन न ले, आहट न पा जाये इस आशङ्का से मुँह से आवाज तक न निकलना चाहती। ओंठों पर बरबस मुस्कराहट फूटने लगती, और दूसरे ही क्षण उन्हीं ओठों को दाँत काटने लगते।'

'अजीब हालत थी उस समय मेरे मन, मस्तिष्क और शरीर के अंगों की।'

'यह सब कुछ मेरी समझ मे न आ रहा था। इसके पहले ऐसा अनोखा अनुभव मुझे कभी स्वप्न मे भी न हुआ था। अच्छा भी लगता और भय से बुरा हाल भी हो जाता।'

'पर अन्त मे मैंने अपने को मदन के पास, उसके कमरे में पाया। वह मेरे दोनो हाथो को अपने हाथो मे लिये हुए, मेरी आँखो मे आँखे डाले मुस्करा रहा था। उसके संपर्क के नशे ने मेरे ऊपर जादू डालना शुरू किया। धीरे-धीरे मैं भी भय-शंका-लज्जा-संकोच से मुक्त हो खुल-खिल कर प्रेम-दृष्टि, प्रेम-संलाप, प्रेम-प्रदर्शन का आदान-प्रदान करने लगी। उसने मुझे अपने हाथो से खिलाया-पिलाया और मैने उसे। हौले-हौले, अनजाने, बिना-समझे मैं एक दम उससे बिल्कुल सट कर बैठी थी। बातें जारी थी। क्या और कैसी, इसका मुझे न तब पता था और न अब ध्यान ही है। केवल इतना भान तब भी था कि मदन कुछ बहुत ही मीठी-मीठी, मन लुभाने वाली, आकर्षक बातें कह रहा था, और इस समय भी उनकी सुखद-मादक स्मृति से विभोर हो उठती हूँ। मैं भी हँस-मुस्करा कर उससे कुछ कहती जाती थी और वह भी ऐसा भाव दिखला कर मेरी उन बातो को सुन रहा था जैसे कानों में मादक संगीत की लहर जा रही हो, जैसे मन में मिश्री घुल रही हो, मन-प्राणों में अमृत की वर्षा हो रही हो।

हम दोनों एक दूसरे के संपर्क-संलाप-संसर्ग की मादक धारा में पूरी तरह से सरावोर थे।'

'इसी समय चुनी-चुनी गालियों के आलाप से दशो दिशाएँ गूंज उठीं। बातें एक दम सीधी-सीधी, साफ-साफ थीं। कोई कोर कसर बाकी न रक्खी गई थी, लगी-लिपटी के लिए गुंजाइश ही न रह गई थी। और यह काण्ड देर तक चलता रहा। शायद मीलों दूर रहने वाले भी इन शुभ-शब्दों से अपने कानों, अपने मन, अपनी आत्मा को बचा न सकते थे।'

'मैं भी विवश होकर सुनती रही और मदन भी। प्रेम के प्रथम उन्माद में हम दीन-दुनिया को भूल गये थे, पर उन गरमा-गरम शब्दों ने हमे सचेत कर दिया, अपने दाहक प्रभाव में लपेट लिया। कुछ देर लगातार उस जहर को पीते रहने के बाद मदन ने एक विशेष ढंग से मेरी ओर देखा, खास तौर पर मेरे अंगों का स्पर्श किया। और मैं... . मैं भी उस समय अपने-आपे में न रह सकी। मेरी आँखो में भी कुछ खास बातें थीं, अंग विशेष चेष्टा से भरपूर थे, मन अनोखी चाह से, सुखद प्यास से उमड़ रहा था।'

'गालियों का जोर बढ़ रहा था, उनमें तेजी आरही थी, और इधर हम दोनों के मन, मस्तिष्क, शरीर बेकाबू हो रहे थे। और अन्त में......'

कह नहीं सकती कि कितना समय बीता। मैं एक प्रकार से बिल्कुल बेहोश-सी थी। और अपने-आप शायद मैं होश में आती भी न, संभवतः खुद होश में आ भी न सकती थी। सहसा जीने के किवाड़ों के पीटे जाने की ध्वनि ने हम दोनो को चौंका दिया। मोहिनी मदन को पुकार रही थी। मै तड़प कर मदन की गोद से उठी और किसी तरह भाग कर अपनी छत से होती हुई अपने जीने के बीच जा पहुँची।'

'अब मुझे समय का, परिस्थिति का ख्याल आया। दोपहर ढल-चुका था। एक बज चुका था। होली का हुल्लड़ कम पड़ गया

था, समाप्त-सा हो गया था। मोहनी के सर और शरीर ने अपनी भावजों-हमजोलियों के रङ्गों से बार-बार तर होकर शान्ति प्राप्त की थी और अब उसे कैद में घुसे हुए मदन की याद आई थी। और मुझे याद आई दीन-दुनिया की।'

'उस मिलन ने मेरी प्यास को बहुत ज्यादा उभाड़ दिया। मदन से खुल कर मिलने के वैसे कम ही अवसर मिलते। और इसी कारण लुक-छिप कर जो रस की बूँदें पा जाती, उनसे अग्नि में घृत पड़ने का ही असर होता। मैं दिन-दिन बेजार होती गई।'

'और जब मदन गया, तो मैं उसके साथ थी। मोहल्ले में क्या, शहर भर में और शहर के आस-पास के स्थानों तक में तहलका मच गया। मदन दूसरी जाति का था और मैं बिलकुल दूसरे जमात की। विवाह का सवाल ही नहीं उठ सकता था। उठाया भी जाता तो दोनों ओर के बड़े-बूढ़ों के राजी होने की संभावना कयामत तक न थी। ऐसी हालत में सिर्फ दो बातें थीं, या तो जिन्दगी भर मदन के लिये आहें भरते हुए तन किसी दूसरे के सिपुर्द करना, अथवा जात-जमात, घर-द्वार, माँ-बाप को हमेशा के लिये छोड़ कर चुपके-चुपके मदन का पल्लू पकड़ना और जो भी सामाजिक विस्फोट हो; उसे सहन करने के लिए तैयार होना।'

'मैंने पिछला रास्ता पकड़ा। मदन की हिम्मत न पड़ती थी। पर मैं कब छोड़ने वाली थी। ठोक-पीट कर अन्त में मैंने उसे राजी कर ही लिया। और हम दोनों वहाँ से हवा हो गये।

'हमारे नाम वारण्ट निकलवाये गये, सरगरमी से खोज-ढूँढ़ की जाने लगी, मुस्तैदी से जासूस पीछा करने लगे। जान लेकर भागना कठिन हो गया। मुझे अपने लिये तो भय था ही,

ज्यादा दहशत थी मदन की हिफाजत के लिए। असल में मैं मदन को लेकर भागी थी, उसे मजबूर करके, उसकी मर्जी के खिलाफ। किन्तु दुनिया में यही बात फैलाई गई कि मदन ही मुझे—एक नन्हीं, अबोध बालिका को फुसला-बहका कर ले भागा है, जात-जमात को नीचा दिखलाने के मकसद से ही। बस, फिर क्या था। कोहराम मच गया। बवंडर खड़ा कर दिया गया। सवाल कुछ-का-कुछ हो गया। और जात-जमात के सभी छोटे-बड़े एक हो कर अपनी इस बेइज्जती का बदला लेने के लिए तुल गये, कमर कस कर पीछे पड़ गये।'

'मदन के और मोहनी के घर वालों ने डर कर कन्धे डाल दिये। मदन को अपने बड़े भाई का बड़ा भरोसा था। पर उन्होंने कोरा जवाब दे दिया। वे इस जहमत से साफ बचे रहना चाहते थे। अब क्या हो? सामने विकट समस्या थी।'

'किन्तु मेरी जात-जमात वालों के जोश-खरोश ने मदन की जात-जमात वालों को ठोकरें मार कर उकसा-सा दिया। कुछ माई के लाल हमारी रक्षा के लिए तैयार हो गये, कुछ तो उपकार एवं जाति की सेवा की भावना से और ज्यादातर मेरी सुनहली रंगत की सबब से पिघल कर, ललचा कर, मुझसे खास उम्मीदें बाँध कर ही। आज कई बरस बीत गये। इस समय भी हम दोनों लुक-छिप कर रह रहे हैं, अपने मददगारों, हितुओं, मित्रों, शुभचिन्तकों की छत्रछाया में; उनके डिक्टेटरी हुक्मों से विवश होकर और अपनी रक्षा के विचार से भी।'

'मेरे एक नन्हीं-सी लड़की हो चुकी है, एक दम जापानी गुड़िया-सी ही। पर वह किसके अंश से है, इसे मैं, उसको जन्म देने वाली माँ होकर भी ठीक-ठीक नहीं बतला सकती। और इसका कारण है, हमारे उपकारी सहायकों की कृपा। उनमें

के ज्यादातर मेरे सुनहले रंग और भोली सूरत के लालच को रोक न सके, और उन्होंने केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति के उद्देश्य से ही हमे आश्रय देना, हमारी मदद करना, गिरफ्तारी से हमें बचाने के लिए छिपा रखना उचित समझा था। उस बेबसी की हालत मे वे किसी-न-किसी बहाने मदन को टाल देते और डरा-धमका कर, फुसला-बहला कर, धोखा देकर मुझे अपने सुनहले रङ्ग को दागी करने के लिए मजबूर करते। अपने और मदन के प्राणो की रक्षा के विचार से मन न रहने पर भी मुझे विवश होना पड़ता, केवल स्थिति के कारण। प्रत्येक मददगार से मुझे जो संघर्ष करने पड़े, उनके दो रूपो, दो रङ्गो के जो अनुभव हुए उन सब की कहानियाँ बड़ी ही करुणाजनक है, एक बारगी...। क्रम से मैं उनको संसार के सामने रखने की चेष्टा करूँगी।'

'आज हम गिरफ्तारी से आछूते बचे तो हैं, पर मैं अपने सुनहले रङ्ग को साफ अछूता न रख सकी, इसका मुझे बहुत ही अधिक क्लेश है। मैं इस मजबूरी हालत से बेजार हो उठी हूँ। देखूँ ईश्वर कब मुझे केवल मदन के साथ निश्चिन्त, निर्द्वन्द, निष्कपट, निष्कलंक, शान्त, सुखी रहने का अवसर देता है।

रानी की माशूका

हाय ! मेरे स्वर्गीय सुख के वे सुनहले दिन !! आज भी याद आते ही मैं दीन दुनिया का कुछ क्षण के लिए बिल्कुल भूल जाती हूँ। उस समय संसार मेरे लिए स्वर्ग था। सुख और प्यार आदर और उत्साह बिखरे पड़े थे। गुलाबी मधुर मुस्कान के साथ उजला सबेरा नई उमंगो पर पेंगें मारता मेरे जीवन के झूले को आन्दोलित कर देता। सुनहला दिन तरह तरह की आशाओं-कल्पनाओं के साथ फैलता और मेरे चारो ओर लाड़-प्यार, मान-सम्मान की लोल-लोल लहरियाँ अठखेलियाँ करती लहराती रहती। रंगीली संध्या शीतल मन्द सुगन्ध के साथ मुझे अजीब रंगरेलियो मे उलझा रखती। जगमगाते तारो से भरी सुरीली तानो से ओतप्रोत, सुखद, सुहावनी, रुपहली रात आनन्दोत्सव को चौगुना कर देती। मधुमय नींद की झपकियाँ मुझे परीदेश में मौज करने के लिए उड़ा ले जातीं। और अनायास दिन फुर्र से उड़ जाता। मुझे पता भी न चलता, भान तक न होता।

दिनो और हफ्तों की तो बात ही क्या, महीनो और वर्षों के बीतने का भी मुझे ख्याल तक न आया। और मैं चौदह बसन्तों के कंधों पर से होती हुई अपनी आयु के पन्द्रहवें वर्ष मे जा पहुँची। सुख के दिन कितनी जल्दी बिना जाने खिसक जाते हैं !!

मुझे अपनी स्थिति और अन्य बातों का ज्ञान तब हुआ जब इफ्लुएंजा मे मेरे माता-पिता दोनों एक साथ मुझे छोड़ कर दूसरे लोक में चले गये और मेरे चाचा (जो अलग दूर दूसरे गाँव में रहते थे) मेरे पिता की जमींदारी और मकान पर कब्जा कर बात की बात में जमीदार बन बैठे। चाचा के साथ उसी

मकान में रहने के लिए आईं तीसरी शादी की मेरी नई-नवेली, तेज तर्रार चाची।

उनके आते ही मेरा सारा संसार ही बदल गया।

× × ×

मेरे पिता अपने अंचल में सब से बड़े और सबसे अधिक धनी जमींदार माने जाते थे। जमींदारी के अलावा लेन देन भी चलता था। रुपयो की नदी सी बहती रहती। जमींदारी का दबदबा और रुपयों का जोर। मेरे पिता की शान शौकत, रोबदाब मान मर्यादा का कहना ही क्या!

और मैं थी उनकी एकमात्र संतान। बड़ी-बड़ी मनौतियों, विशेष-विशेष अनुष्ठानो, गुप्त-प्रकट पूजा पाठों, शास्त्रोक्त सिद्धिदायक व्रत उपवासों एवं नाना प्रकार के उद्योगों के अनन्तर, माता के निराश और पिता के वृद्ध होने पर जाकर कहीं मेरा जन्म हुआ था। माता पिता के मुर्झाये हुये हृदयों को कितना आनन्द हो सकता था, इसका अनुमान करना कठिन न होगा। मेरे जन्म के समाचार देने वाले को निहाल कर दिया गया था, गरीबों की गरीबी दूर कर दी गई थी। याचक दाता बना दिये गये थे।

मैं किस लाड़ प्यार, नाजोनखरे से पाली गई, इसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता।

बड़े आदमी की वृद्धावस्था की एक मात्र दुलारी बेटी! गृहस्थी के काम धंधों से उसे क्या मतलब!! और खास कर जब लाखों की जायदाद देकर घर जमाई की बात निश्चित कर ली गई हो।

माता पिता की इच्छा ही नहीं, दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि मेरा विवाह किसी ऐसे सुन्दर योग्य युवक से किया जायगा जो मेरे साथ ही इस सारी रियासत की देख भाल, हमारे ही यहाँ रह कर करे। ऐसी स्थिति में ससुराल जाने की बात ही न उठती

थी। तब फिर मुझे किसी काम काज के जानने सीखने के झंझट मे फँसने की जरूरत ही क्या हो सकती थी।

किन्तु नई नवेली, तेज तर्रार चाची ने आकर दुनिया ही बदल दी। मुझे सोते जागते, उठते बैठते, रात दिन तानो की बौछारों और झिड़कियो की मूसलाधारो का सामना करना पडा।

सुख के बाद जो दुःख आता है, वह अधिक भयावह, अधिक असह्य जान पडता है। प्रकाश मे रहने के अनन्तर अन्धकार मे पहुंच जाने पर आँखो और मस्तिष्क दोनों ही पर उसका अधिक प्रभाव पड़ता है।

मेरा जीवन असह्य हो उठा। मुझे अपना भविष्य और भी अधिक अंधकारपूर्ण; कहीं अधिक भीषण देख पड़ने लगा। मैं मृत्यु को अधिक उत्तम समझने लगी।

+ + +

इसी समय भाग्य ने फिर पलटा लिया। संसार ही बदल गया।

जमीन जायदाद, पद प्रतिष्ठा के सिलसिले मे चाचा को राजदरबार मे हाजिर होना पड़ा। मेरी भी जरूरत थी। इच्छा न होने पर भी चाची को मुझे अपने साथ ले जाना पडा। राजधानी में चाची ने बड़ी बड़ी कोशिशें कीं कि मै किसी से मिलने बोलने न पाऊँ। पर उनकी ज्यादा न चली। मै रनवास मे राजमाता और छोटी बड़ी महारानियो के सामने बुलाई गई। इसके पहले भी अनेक बार मुझे महलो मे जाने और महारानियों के सहवास मे आने के अवसर प्राप्त हो चुके थे। पिता के कारण राजमहल मे मेरा आदर भी काफी था। इस बार मेरे साथ सभी ने खूब सहानुभूति दिखाई छोटी महारानी ने तो मुझे रात को अपने पास ही रख लिया। चाची मुझे छोडना न चाहती थीं। पर महारानी के सामने वे कुछ बोल न सकीं। यही से मेरे जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। लाख चेष्टा करने पर भी

फिर चाची मुझे अपने साथ वापस न ले जा सकीं। उसी रात से मैं छोटी महारानी का छत्रछाया मे उनकी सहचरी के रूप में राजमहल में रहने लगी।

और यहीं मुझे आश्चर्य मे सराबोर करने वाले जवानी के वे रहस्य विदित हुय, जो किसी को भी रोमांचित करने मे अमोघ माने जायेंगे।

अभी तक मैं अबोध बालिका मात्र थी। इधर कुछ समय से अंग अंग मे फड़कन उठना, मन मे नई उमगे लहराती क्षण-क्षण में एक अजीब स्फूर्ति, अनोखी सनसनी का अनुभव होता। मन आकाश मे तारों के साथ-साथ हिंडोले सा झूलता जान पड़ता। अनायास मैं प्रसन्नता, मस्ती उमंगो की लहरों से सराबोर हो उठती। आँखों मे चमक सी पैदा हो जाती। ओंठो पर बरबस मुस्कुराहट और सुरीली मन्द मधुर तान फूट पड़ती। अंग-प्रत्यंग चंचल हो उठता, शरीर भर मे सनसनी दौड़ जाती। रोमांच हो आता। हृदय मे मनोमुग्धकारी कम्पन होने लगता। खिलखिला कर हँस पड़ने, अठखेलियाँ करने, झूमने थिरकने के लिए मन मचलता रहता। चारो ओर मस्ती का आलम छाया जान पड़ता।

मेरी समझ मे न आता कि यह सब क्यों होता है।

इसी बीच मे माता-पिता के बिछोह और चाची के अत्याचार के काले-काले बादल छा गये। सारी मस्ती भूल गई।

किन्तु राजमहल में रानी साहबा के साथ की एक रात ने अंधकार को दूर कर दिया। मुझे दुःख संकट के सागर से निकाल कर फिर आनन्दोद्यान मे लाकर हिंडोले पर झुलाना प्रारम्भ किया। रानी के सहवास ने मेरी आँखें खोल दी। मुझे सहसा पता चला कि मैं जवान हो रही हूँ, सुन्दरी हूँ और .. और .... ..।

छोटी रानी भी अपनी जवानी के पूरे जोम मे आ चुकी थी। वे भी "लाखों में एक" नही तो "दस बोस हजार मे एक" जरूर थी। और ऊपर से था रनिवास का विलासमय सुखी जीवन, राजसी ठाटबाट, अयाचित, अनन्त सौंदर्य साधन की सीमा रहित सुविधाएँ।

रंगीन, कोमल सपनो को नित्यप्रति के बँधे कसे बदरंग जीवन मे साकार उतार लाने का समय था पूरी सुविधाएँ थीं, उम्र थी और थी मन माफिक मोड़ी जाने वाली अनुकूल परिस्थिति।

\+ \+ \+

मेरी एक दूर की बुआ थी। ढलती उम्र की मेरे यहाँ अनेक बार उनका खासा स्वागत सत्कार हो चुका था। मै अपने पिता के राज्य मे उनको काफी सहायता पहुंचा चुकी थी। इन बुरे दिनों मे उन्हे मेरी दयनीय दशा पर तरस आया। वे मेरे आने के पहले ही मेरी करुण कहानी सुन चुकी थी। और समय पाकर उन्होने छोटी रानी से बहुत कुछ कहा सुना न था। वे छोटी रानी की खास कृपा पात्र थी।

उनके कहने और मेरे रूप रंग उभरते रंग उभरते यौवन आकर्षक व्यक्तित्व ने छोटी रानी पर प्रभाव डाला। मुझे देखते ही रानी ने मुझे अपनी सहचरी के रूप मे अपने पास रखने का निश्चय सा कर लिया। और मैं महलो मे ही रह गई।

\+ \+ \+

आधी रात तक रंग राग, आनन्द उत्सव चलते रहे। प्रायः एक बजे के बाद फुर्सत मिली।

छोटी रानी बराबर मुझे अपने साथ ही साथ लिये फिरती थीं। महल भर की नजर मुझी पर थी। बड़ी कठिनाई से चाची

मुझे छोड़ कर महलों से गई थीं। रानी अपने साथ ही मुझे शयनागार में ले गईं। वहाँ मुझे बड़े प्यार से बैठाल कर सहानुभूतिपूर्ण भाव से मेरी करुण-कथा मेरे मुँह से सुनी। मैंने देखा, उनके नेत्रों में अनेक बार आँसू छलछला आये, जिन्हें उन्होंने बड़े कौशल से पोंछ डाला।

मेरी सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने मुझे अपने हृदय से लगा कर गद्गद् स्वर में कहा—'तुम बहुत कष्ट उठा चुकी हो। अब तुम सुख से मेरी सहेली के रूप में मेरे पास यहीं महलों में रहो। तुम्हें चाची के पास लौट कर न जाना पड़ेगा। मैं सारा प्रबन्ध कर दूँगी। आज से तुम मेरी सखी हुईं।' मैं आनन्द और कृतज्ञता से पागल सी हो उठी। चाची की कठोर यंत्रनाओं से मुक्ति मिली और साथ ही रनिवास का सुखी जीवन प्राप्त हुआ। वह भी छोटी रानी की सखी के रूप में। मुझे और चाहिए ही क्या था। मैंने रानी के पैरों पर अपना सर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी। रानी ने मुझे उठा कर फिर अपने हृदय से लगा लिया और मेरे मुख को अपने दोनों हाथों में लेकर अनेक प्रकार से सान्त्वना देकर मुझे शान्त किया।

रात के दो बज चुके थे। किन्तु न मुझे नींद थी और न रानी को। साधारण तौर पर मुझे या तो किसी दूसरे कमरे में चले जाना चाहिए था। अथवा रानी के पलङ्ग के नीचे लेट कर रात बिता देनी चाहिए थी। पर मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि खास खिदमतगारिनों और अन्य सहेलियों को एक-एक कर रानी ने धीरे-धीरे विदा कर दिया। फिर खुद अन्दर से शयनागार के सब किवाड़ों को बन्द किया। इसके बाद सारी बत्तियों को बुझा कर केवल एक हल्की नीली बत्ती जलती रहने दी। यह सब करने के बाद वे आईं और केवल एक रेशमी जाँघिया और हल्की बाडिस अपने शरीर पर रहने दी, शेष सारे कपड़े उतार दिये।

उस हल्की रोशनी में उनका सुन्दर, सुडौल शरीर बहुत ही सुहावना लुभावना मालूम हो रहा था। लज्जा एवं संकोच आदर के कारण मेरी आँखें आपसे आप नीची हो गईं।

रानी ने मुस्कराते हुए मेरी ठुड्डी एक हाथ से पकड़ कर मेरे मुख को ऊपर उठाया और देर तक चमकती हुई आँखों से एक टक एक विचित्र भाव से मेरी ओर देखती रहीं। फिर मुझे भी एक रेशमी जाँघिया और बाडिस देकर पहनने के लिए कहा।

मैं शर्म के मारे गड़ी जाती थी। पर रानी ने ज़िद कर मेरे सब वस्त्र उतरवा दिये और मुझे भी अपनी ही तरह रेशमी जाँघिये में लैस कर ही के छोड़ा। फिर वे अपने पलङ्ग पर बैठ गईं और मुझे अपनी बगल में बैठा लिया। उनका एक हाथ मेरी कमर में था और दूसरा मेरी ठुड्डी पर। देर तक उसी तरह बैठी हुईं वे मुझसे तरह-तरह की मीठी-मीठी बातें करती रहीं। बराबर उनके ओठों पर मुस्कराहट बनी रही और आँखों में एक विचित्र भाव। उनकी बातें इतनी मधुर, उन्मादकारी, आकर्षक एवं हृदयग्राही थीं कि मैं बराबर उनकी ओर खिंची जा रही थी। जैसे-जैसे मिनट बीतते वैसे ही वैसे मुझे जान पड़ता, मानो मुझसे उनकी घनिष्ठता वर्षों की ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरों की है, जैसे मैं अपना सब कुछ देकर भी उन पर निछावर होने में अपने जीवन का सब से बड़ा काम समझूँगी। मैं सर्वतोभावेन उनके वश में होती जा रही थी। जैसे कोई जादू मुझे उन पर कुर्बान होने के लिए विवश कर रहा हो।

अन्त में वे लेट गईं और मुझे अपने साथ सटा कर लिटा लिया। मेरे सारे बदन में बिजली दौड़ गई, मेरे रोमांच हो आया। उन्होंने अपने उभरे हुए सीने से मुझे ज़ोर से चिपटा लिया और चुम्बनों का ताँता बाँध दिया। मेरी अजीब हालत थी।

अच्छा भी लग रहा था और कुछ ऊब-सी भी मालूम हो रही थी। इस तरह की बातों का यह पहला ही अवसर था। एक ही क्षण मे मैं अबोध बालिका से ज्ञात-यौवना हो गई। मुझे साफ-साफ मालूम हो गया कि मै जवान हो गई हूँ और मेरे हृदय मे भी जवानी की ख़ास मस्तानी उमंगें और आकांक्षाएँ हैं। रानी के वक्षस्थल से अपने उभार पर आने वाले वक्षस्थल को रगड़े जाते पाकर मुझे एक बहुत ही नन्हे से दर्द के साथ एक अपूर्व अनिर्वचनीय, उन्मादकारी, मनोमोहक आनन्द आ रहा था।

रानी की भरी हुई कोमल जाँघें मेरी जाँघो से सटी हुई थीं, उनकी पिंडलियाँ मेरी पिंडलियों से उलझी हुई थी, उनकी गोल गोल मांसल बाहें मेरी कमर और गर्दन को लपेटे हुए अपने शरीर की ओर कसती जा रही थी, उनके कोमल, लाल, पतले ओठ मेरे ओठो को चूस रहे थे, उनकी नाक से निकली तेज स्वांस मेरी स्वांस से मिल रही थी, उनकी मस्ती से अधखुली सुर्ख-सुर्ख, बड़ी-बड़ी आखें मेरी आँखो से मिली हुई थीं। उनके सारे बदन मे पुलक और रामॉच था, सहसा बीच-बीच मे उन्हें भी कंपन-सा हो आता था। वे मदनोत्तेजना की पराकाष्ठा पर थी। मेरे लिए यह एक सर्वथा नवीन, उन्मादकारी, आश्चर्यचकित करने, गुदगुदी लाने वाले अपूर्व सुख भय लज्जा तुष्टि का अनुभव था।

इसके बाद क्या हुआ इसकी मुझे केवल वैसी ही सुधि है जैसे हल्के भीने स्वप्न की रह जाती है। और उसका वर्णन करना न तो सरल ही है और न उत्तम ही।

राजा के दर्शन कभी छठे-छः मासे ही मिलते है। और महलो के ऐसे विलासपूर्ण वातावरण मे रानी का इस प्रकार संतुष्टि प्राप्त करना प्राकृतिक ही है।

× × ×

रानी ने मुझसे अनेक प्रकार की शपथें कराईं, सबके प्रतिज्ञाओं में बाँधा, दो-चार कागजों पर दस्तखत भी कराये। वे मेरा मुँह बन्द रखना चाहती थीं और चाहती थी अपने पास सखी बना कर रखना भी। और जिस कष्ट को मैं चाची के साथ भोग चुकी थी उससे मैं भी दूर ही रहना चाहती थी। साथ ही यह नूतन अनुभव भी कुछ कम प्रलोभनकारी, कम सुखद न था। मैंने रानी की प्रत्येक बात स्वीकार कर ली।

और फिर तो रोमांचक, प्रेमपूर्ण घटनाओं का तांता-सा बंध गया। मैं एक ही रात मे जवानी के पूरे जोम मे आ गई।

सभी जानते थे कि मैं रानी की मशूका हूँ।

पूजा का पाप

"रानी की माशूका भी आई है, कौन-सी है ?"

'वह क्या है, नीली कामदार साड़ी वाली'।

इसी तरह की बातें सैकड़ों स्त्री-पुरुषों की जबान पर थीं। सभी मेरे सम्बन्ध में उत्सुक जान पड़ते थे। महलों में आये मुझे अभी ज्यादा दिन नहीं हुए थे। पर इतने ही कम समय मे मुझे नाना प्रकार के अनोखे अनुभव हुए; तरह तरह की विचित्र घटनाएँ घटीं और अजीब-अजीब बातें मेरे सम्बन्ध में फैलीं, महलों में और महलों के बाहर शहर में भी।

विचित्र घटनाओं में से एक थी "राजा साहब का अभिसार," उनका आधी रात के बाद जनाने कपड़ों-गहनों से लैस होकर

अंधेरे मे लुक-छिपकर मुझसे मिलने के लिए आना और स्त्री-लोभी अफसरों-पहरेदारो द्वारा छेड़ा बनाया मसला सताया जाना। घटना बड़ी मजेदार है, बेहद दिल लुभाने वाली, एकदम अनूठी। पर उसे फिर सुनाऊँगी।

हाँ, तो मेरी शोहरत काफी फैल चुकी थी। अनेक कारणों दृष्टियो से सभी छोटे-बड़े जवान मनचले मुझे देखने के लिए व्याकुल रहते। महल मे आनेवाली सभी स्त्रियाँ-युवतियाँ भिन्न-भिन्न अभिप्रायो से मुझसे मिल-भेंट लेती। मैं भी सभी का मन रखने के लिए, मन न होने पर भी हर एक से हँस-मुस्कराकर बोल-बतला लेती।

महलों मे आने के साथ ही मुझे महल के गुप्त रहस्यो का पता चलने लगा। ऐसी-ऐसी विचित्र बातो का ज्ञान हुआ, जिनकी बाहरवाले कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि हो सका तो प्रेमी पाठको के सामने मैं उन सबको उपस्थित करने की चेष्टा करूँगी।

महलो मे ऊपर से तो सभी सती सावित्री पवित्र पतिव्रता बनी रहने की बेहद चेष्टा करतीं, किन्तु कोई दिन न जाता जब माल न फँसाये जाते, नये शिगूफे न तैयार होते। मौज मजा के लिये, शिकार फँसाव के निमित्त महलो मे अनेक गुप्त टोलियाँ थीं, खास संगठित दल। उनमे आपस मे जो चोटें चलतीं, जैसे राजनीतिक दाँव पेच खेले जाते उन सबका वर्णन बड़ा ही हृदय-ग्राही, रोमांचकारी है।

हाँ, तो मैं काफी मशहूर बदनाम हो चुकी थी। इन कुछ दिनो में ही मैं खूब मँज सध भी गई थी। दूसरी नायिकाएँ यदि डाल-डाल चलती, तो मैं पात-पात उड़ती। रूप रंग के लोभी भौंरों को उल्लू बनाने तड़पाने खिझलाने मे भी मुझे बड़ा रस मिलता। पर कभी-कभी मुझे बुरी तरह मुँह की खानी पड़ती, उल्लू बनाते-बनाते खुद बेवकूफ बन जाती, और ऐसे अवसरो

पर भारी कीमत देकर ही अपना छुटकारा कर पाती। ऐसी ही एक शतरंजी चाल में चूक जाने के कारण मुझे पूजा के पाप मे फँसना पड़ा। उसकी याद आते ही आज भी कलेजा काँप उठता है, पर कुछ गुदगुदी भी हो आती है।

रनवास की स्त्रियाँ, खास कर युवती सुन्दरियाँ प्रायः महलों के बाहर आम तौर पर बाहर नहीं निकलने पातीं। उन्हें अपने शारीरिक संतोष के लिए अन्दर ही किसी तरह तोड़ जोड़ करना पड़ता है। पर कुछ ऐसे भी अवसर आते हैं, जब रानी, राजमाता आदि को छोड़ कर और सभी स्त्रियाँ महलों के बाहर आ जा सकती हैं, खास प्रबन्ध के द्वारा। किसी सम्मानित व्यक्ति अथवा कृपापात्र मुँह लगे के द्वारा देवियो को विशेष पूजा अर्चा के अवसर पर ख़ास तौर पर बुलावा दिये जाने और आज्ञा प्राप्ति के बाद कोई भी युवती रनवास से उस पूजा में शामिल हो सकती। कभी-कभी रानी सा० अपनी प्रतिनिधि के रूप मे किसी खास सेविका, कृपापात्री या सहचरी को उस पूजा में भाग लेने के लिये भेजतीं।

एक था 'अलबेला।' राज द्वार पर उसकी खासी इज्जत थी। वह राजा साहब का भी कृपापात्र माना जाता और रानियो का भी दया भाजन, उसका काम था राजा साहब के फाटक पर हाजिरी देना और रनिवास डेउढ़ियो पर जा-जा कर हर महल में सेवा सलाम, जुहार अर्ज कराते रहना। उसकी जीविका का आधार ही थी खुशामद, तोड़ जोड़, 'इस उसी की इच्छाओं की पूर्ति के लिए लासा लगाना'। इस फन मे वह हो भी गया था पूरा उस्ताद।

कुछ समय से उसके सलाम जुहार चुनी हुई स्त्रियों के द्वारा मेरे पास आने लगे थे। उत्सवों, त्योहारो पर तो खास तौर पर

और जब तब अवसर गढ़ बनाकर अक्सर ही मेरे पास नायाब तोहफे, भेंटें, नजरे भी आने लगीं। किन्तु चुरा छिपा कर ही, ताकि रानी साहिबा को पता न चले। मैं 'अलबेला' के बड़े बड़े कारनामों, भीषण रहस्यों को काफी सुन चुकी थी। उसकी कृपा दृष्टि मुझ पर पड़ी है, यह जान कर मैं सतर्क हो उठी। किन्तु उसकी सहायता करने वाली दूतियाँ बड़ी ही छँटीं निकलीं, मुझसे कई दर्जे ज्यादा मँजी हुईं। उन्होंने मुझसे अपनत्व दिखलाया, ऐसी-ऐसी बातें कीं कि मैं अन्त मे 'अलबेला' के प्रति उदासीन न रह सकी। मुझे उसके भेजे हुए नजराने के तरह-तरह के सामानो को स्वीकार ही करते रहना पड़ा। पर एक भाव मेरे अन्दर और भी काम कर रहा था। वह था 'अलबेला' ऐसे घाघ को चरका देना और उसके फंदे मे न फँस कर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करना।

दिन बीतते गये। 'अलबेला' और उसकी दूतियो का जादू असर करता गया। अन्त मे मैं बाहर जाकर उससे मिलने-बोलने के लिए राजी हो गई। दूतियो ने सौगन्ध खा कर कहा था कि 'अलबेला' बुरा आदमी नहीं है, वह तो केवल आपको निकट से देखना, पास मे खड़े होकर आपसे दो बातें करना चाहता है। वह तो आपको देवी का रूप मानता है और इष्टदेव की तरह आपकी पूजा करता है। भला ऐसा आदमी आपके ऊपर अपनी नजर कैसे डाल सकता है। आपके प्रति बुरा बिचार कैसे रख सकता है। वह तो आपसे केवल दो बातें करने के लिए ही तरस रहा है।

मैंने न जाने क्यों उस समय इन बातों पर विश्वास कर लिया। वैसे भी मै अपने को वीर और दृढ़ लगाती थी। मेरा विश्वास था कि मेरी इच्छा के विरुद्ध कोई भी पुरुष मेरे शरीर को हाथ तक नहीं लगा सकता। और इसी घमंड के कारण मैं

'अलबेला' के जाल मे बुरी तरह जा फँसी।

मुझे राजी करने के बाद दूतियो ने 'अलबेला' से सलाह कर देवी-पूजा का भारी स्वाँग रचा। शहर मे दश-बारह मंदिर देवियो के हैं कुल शहर के विभिन्न मोहल्लों मे और कुछ शहर के बाहर बस्ती से दूर, एकान्त स्थानो पर। यह बात चारों तरफ फैला दी गई कि राज-परिवार के कल्याण के विचार से राज-भक्त 'अलबेला' सभी देवियों की पूजा-अर्चा करने का सांगोपांग आयोजन कर रहा है। इस पूजा-समारोह मे उसे राज-द्वारो से खासी रकमे मिलीं, काफी सामान दिया गया। रनिवास से प्रतिनिधियो के रूप मे अनेक युवतियां भेजी गई। मुझे भी छोटी रानी साहबा ने खास तौर पर सजा कर भेजा।

और सारा शहर मुझे देखने-घूरने के लिए टूट पड़ा। हजारो आँखें मुझे तलाश मे बेताब थीं; हजारो जबानें मेरी बातो को कहने-पछने मे सटासट चल रही थी; हजारो कान मेरी बातें सुनने के लिए उतावले हो रहे थे।

देवियों की पूजा के उस समारोह की अधिष्ठात्री देवी मै ही हो रही थी। छोटे बड़े स्त्री-पुरुष सभी मेरे ध्यान मे मग्न थे, मेरे दर्शनो के लिये व्याकुल थे, मेरे यश-गान मे रत थे। उनके नेत्रों, कानों, जिह्वाओ, मनो, प्राणो मे मैं व्याप्त थी। उनके रोम-रोम मे उस समय मैं समाई हुई थी।

अपनी इतनी सर्व-व्यापिनी, संमोहिनी शक्ति देख कर मुझे बड़ा गर्व हुआ। उस समय मै भी आपे मे न थी। आत्म-गौरव के नशे ने मुझे मदहोश कर दिया था। मुझे सारा ससार तुच्छ देख पड़ रहा था, आकाश मडल मकड़-जाले-सा जान पड़ता था। मै अपनेपन की तेज मदिरा के मद मे बेहोश थी। पहले मंदिर मे पूजा प्रारम्भ हुई। मन्दिर था तो एक प्रकार से शहर के बीच मे ही, पर नदी के तीर होने, और दूर तक उसके बगीचे के

सिलसिले के चले जाने के कारण वह एक प्रकार से आसपास की बस्ती से अलग ही था। उधर देवी जी की पूजा आरम्भ हुई और इधर रूप-यौवन की प्रशंसा, गुणों के बखान, राजसी आव-भगत। 'अलबेला' आज सचमुच अलबेला बना था। ठाट निराले थे। ऐसा सजा था, जैसे कोई राजकुमार हो। उसने देवी की पूजा के लिये पंडितों- पाधाओं पुरोहितों पुजारियों को पैसे के बल पर खरीद कर लगा रक्खा था। और खुद मेरी पूजा-अर्चा मे हाजिर था। आते ही उसने बड़ी नम्रता से, आदर-सम्मान दिखलाते हुए हाथ जोड़ कर सलाम-जुहार-प्रणाम किये। फिर चुने हुए शब्दों में मेरी प्रशंसा के साथ अपने उत्कट-प्रेम, उस प्रेम के लिए प्राणों तक को दे डालने के संकल्प, मुझे प्रसन्न करने के लिए सब कुछ करने सहने की दृढ़ प्रतिज्ञा की बातें बड़ी लच्छेदार भाषा में करने लगा। वह यही सिद्ध करना चाहता था कि उसे शरीर या शरीर से सम्बन्ध रखने वाले सुखों का तनिक भी लोभ नहीं है। वह तो चाहता है निष्कपट प्रेम और शुद्ध हृदय से दूर से दर्शन।

उसकी दूतियाँ भी उसकी बातों की पुष्टि कर रही थीं। मैं झांसे मे आ गई। जादू का असर होते देख, वह प्रसन्न हो उठा। इसी समय एक स्त्री प्रसाद लाई। 'अलबेला' ने पहले मुझे खिलाया-पिलाया, मैंने नखरों के साथ दो-चार ग्रास लिये, कुछ पंचामृत पिया। किन्तु इतने ही ने पेट मे पहुँच कर सर को घुमा दिया। मैं कुछ बेहोश सी हो गई। इसी समय 'अलबेला' ने मुझे एक बिस्तर पर . ...

करीब आधे घंटे बाद मुझे कुछ होश आया। उस समय तक मेरी इज्जत कुछ-की-कुछ हो चुकी थी अलबेला मेरे साथ ही बिस्तर पर पड़ा था। मैंने क्रोध मे भर कर जोर का घूँसा उसकी नाक पर जड़ना चाहा। पर वह इन सब बातों के लिए पहले से

ही तैयार था। मेरा वार खाली गया। इसी समय महल की दो-तीन ऐसी स्त्रियाँ वहाँ आ गईं, जिनका बड़ा रोब था। मुझे अलबेला के साथ एक बिस्तर पर देख, वे कुछ बड़बड़ाती हुई तेजी से वहा से चली गई। मैं भय-लज्जा आश्चर्य से किंकर्तव्य विमूढ़-सी रह गई।

यह भी अलबेला की एक भारी चाल थी। वे स्त्रियाँ उसी के इशारे पर मुझे भय-आतंक से विह्वल करने के लिये ही वहाँ उस समय आ पहुँची थीं और तुरन्त वहाँ से चली भी गई। रनिवास में मेरी क्या दशा हो सकती है, इसकी कल्पना मात्र से मैं कांप गई।

अलबेला ऐसे मौके की तो ताक मे था ही। उसने मुझे डरा-धमका कर, समझा-फुसला कर अपनी मुट्ठी मे पूरी तरह से कर लिया। बदनामी से बचने और रनिवास से बेइज्जत होकर निकाली जाने के भय से छुटकारा पाने की आशा से मैं उसके इशारो पर नाचने, सब कुछ करने कहने के लिए तैयार हो गई।

फिर तो दिन भर मेरे शरीर को भारी प्रायश्चित करना पड़ा। अलबेला की भूख तो कई बार शान्त करनी ही पड़ी; साथ ही उसके कुछ मित्रो को भी बार-बार शान्त करना पड़ा। हर मन्दिर के किसी-न-किसी भाग मे मेरे लिए खास इंतिजाम कर दिया जाता अलबेला के रुपये और उसकी चतुर, दूतियो के आगे सभी कुछ सरल था। और हर मन्दिर मे देवी की पूजा के साथ मेरे शरीर की पूजा चलती। मेरा शिथिल शरीर ब्राडी के तथा अन्य उत्तेजक शक्ति संचारक साधनो के द्वारा कार्य-रत रक्खा गया। हर मन्दिर की पूजा के बाद दूसरे मन्दिर तक एक बड़ा सा जुलूस बना कर ले जाया जाता। मुझे भी सब की आँखों मे धूल झोंकने के लिए दो-तीन बार पैदल और फिर पालकी-नालकी पर

सवार कराकर ले जाया गया। यह सब राक्षसी-माया का क्रम प्रायः आधी रात तक चला।

जब मैं महलों में पहुँची, तो रात कुछ ही घंटे शेष थी। और मेरे शरीर में भी कुछ ही सांसें शेष जान पड़ती थी।

राजा साहब का अभिसार

'रानी की माशूका' की रट राजा साहब को भी लग रही थी, इसका मुझे पूरा पता था। मेरे आने के बाद ही राजा साहब का महलों मे आना-जाना बढ़ गया था। वैसे उनके मनबहलाव के सारे सामान महलों के बाहर ही जुटा दिये जाते और इस कारण उन्हें महीनो क्या आधे-आधे साल तक महलो मे आने की जरूरत ही महसूस न होती। और महल वालियो को अपनी-अपनी जरूरतों को पूरा करते रहने का इन्तिजाम, जैसे भी हो, खुद खास तौर पर करना पड़ता। फलतः दो सौ हाथ लम्बी रेशमी-सीढ़ी तैयार की गई; मन्दिर के नीचे से सुरङ्ग बनवाई गई, चोर-दरवाजों का इन्तिजाम किया गया और न जाने कितने रहस्यमय तिलस्मी उपाय रचे गये। प्रत्येक के साथ अत्यन्त कलापूर्ण कोमल कहानी जुड़ी हुई है, सच्ची, पर बहुत ही आश्चर्यजनक एवं मनोरंजक। जब संसार के सामने अपनी बीती बतलाने पर तुल ही गई हूँ, तो यथा समय सभी खोल कर रखने का साहस करूँगी।

हाँ, तो आज राजा साहब के अनोखे अभिसार का वर्णन दे रही हूँ। 'रानी की मशूका' बनते ही मै गहरे आकर्षण का

केन्द्र बन गई थी। सभी में मेरी चर्चा थी, सभी मेरी ओर उत्सुक आंखें उठाये रहते। राजा साहब को भी मेरी शोहरत आखिर एक दिन महलों मे खींच ही लाई। छोटी रानी ने मुझे एक तहखाने में छिपा दिया, वे मुझे राजा साहब से दूर ही रखना चाहती थी। और उस दिन तो राजा साहब को चकमा देने मे वे पूरी तरह से सफल हो गईं। घंटों छोटी रानी के पास मेरी आशा लगाये, बैठे रहने पर भी बेचारे राजा साहब को अन्त मे निराश लौटना पड़ा।

वैसे राजा साहब हरफन-मौला थे, आठों गांठ कुम्मैत। आज-कल की बहारी वाली नौजवान दुनिया की कोई भी बात उनसे छूटी न थी। और छूटती कैसे। उनके लालन-पालन, देख-रेख, शिक्षा-दीक्षा, संभाल-सरेख, खेल-कूद, आराम-आशायिश के लिए जिन चुने हुये विश्वासी, खानदानी सरदारों-मुखियों की ड्युटी लगाई गई थी, उन्हे नव-विकासोन्मुख सुकुमार सलोने राज-कुमार के भविष्य की वैसी चिन्ता-उत्कंठा नहीं थी, जैसी की अपने अखण्ड प्रभाव को अछूता बना रखने की प्रबल लालसा थी, जैसी अपने पद-मर्यादा, जागीर-वेतन को सुरक्षित रखने की उत्कट प्रतिज्ञा थी। राजकुमार तो आखिर एक-न-एक दिन राजा होकर ही रहेंगे। जब उन्होने राजा के यहाँ बड़े कुमार के रूप मे अवतार ले ही लिया, तब भला वे राजगद्दी पर तो अवश्य ही बैठेंग। और जब राजगद्दी पर बैठेगे ही, तब राज-काज चलाने के लिये योग्य आदमियों की कमी कैसे रहेगी। ऐसी दशा में राजकुमार मे किसी खास गुण के होने-न होने से कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। राजकुमार को विशेष बातो के सीखने की वैसी जरूरत ही क्या है। हाँ, उन्हे ऐशो आराम से राजसी जिन्दगी बिताने की कलायें जरूर सीख लेनी चाहिये। जब इतने ऊँचे पद पर उनका जन्म हुआ है तो सारे सुखों को

भोगा ही क्यों न जाये। संसार के सभी सुखों को जी भर कर भोगने के लिए ही तो मनुष्य का जन्म राज-घराने मे होता है। राजकुमार होकर भला कुली-कबाड़ी के कामों से क्या सरोकार! और जब राजकुमार राजा होंगे हो, तब फिर उनके लकड़पन के सेवक-सहायक क्यो न अपने सारे जीवन के लिये उन पर प्रभाव जमाये रखने का खास प्रबन्ध कर लें, ऐसा मौका पाकर भी यदि चूका जाय तो इससे बढ़ कर मूर्खता और क्या हो सकती है।

इन्हीं पक्के सिद्धान्तो के अनुसार राजकुमार के उन निरीक्षको, सेवको ने उन्हे ऐसी-ऐसी टेवें लगवा दी. जिनके कारण उन्हे सदा निरीक्षकों सेवको के आगे आंखे नीची किये रहना पडे उनके खिलाफ आवाज उठाने, अंगुली हिलाने की हिम्मत न पड़े और राजासाहब ही कनौड़ रहेंगे, उनसे सीधे आँखें न मिला सकेंगे, तब फिर राज्य में ऐसा कौन होगा, जो इन पुराने सरदारों के खिलाफ चूँ तक कर सके।

फल क्या हो सकता है, इसकी कल्पना ही काफी है। अभी राजकुमार को खिलौने खेलने से ही फुरसत न हो पाई थी कि उनके ऊपर ऐसे नवयुवकों की टोली नियुक्त कर दी गई जो उन्हें हँसा-फुसला कर उनको खेल गई। वार भरपूर बैठा। और देखते-देखते सुकुमार राजकुमार एक अजीब लत के शिकार बन गये।

महीने बीते, सालें गुजरीं। राजकुमार ने लड़कपन के बाहर पैर रखना शुरू किया। निरीक्षक तनिक चौकन्ने हुए। उन्होंने आश्चर्य से देखा, राजकुमार मे स्त्रित्व की भावना के साथ-ही-साथ पुरुषत्व की प्रबल भावना जोर पकड़ रही है, जो लाख चेष्टा करने पर भी दबाई नहीं जा सकती। मजबूर होकर शुभ चिन्तक निरीक्षको को उनके पास ऐसे सुबुक-सकुमार किशोरो की दूसरी मंडली

पेश करनी पड़ी जो उनकी इस नवीन जागृत-भावना को शान्ति करती रहे।

और इस शान्ति के साधन के साथ ही उन चौकस चौकन्ने रहने वाले अभिभावकों-सेवकों को राजकुमार को अपने वश में रखने, उन्हे सदा फँसाये रहने का एक और जरिया मिला। और कुमार ने एक नया, अनोखा निरन्तर लिप्त रखने वाला रस पाया। एक प्रबल लत और लगी। नई-नई फरमायशें होने लगीं, नये-नये अनूठे-अनूठे तोह्फे पेश किये जाने लगे।

समय और भी तेजी से खिसक रहा था। कुमार किशोरावस्था की देहली को लांघ कर आगे बढ़ने का अनजान प्रयत्न कर रहे थे, कि इसी संध-स्थिति में एक ऐसा गुल खिला जिसने सजग, अनुभवी, संसार के छँटे खिलाड़ी सरदारों अभिभावकों को फिर सहसा चौंका किया।

कुमार को ईश्वर ने अपार रूप दिया था, अपरिमित लावण्य, अटूट सौकुमार्य। मुख की बनावट, अंगों की गढ़न, रंग की गुराई, संचलन की शुष्ठुता, सुकुमार शोभा, आकर्षण की तीव्र मादकता हजारों में क्या, लाखों में अपना सादृश्य न रखती। और इन ईश्वर-प्रदत्त विभूतियों के साथ ही राजसी ठाठ एवं कृत्रिम सौंदर्य परिवर्तन के सभी उत्कृष्ट साधनों की भरपूर सहज सुविधाएँ। इन सब पर एक खास बात होगई। कुमार अभी अबोध बालक मात्र थे, कि उनके कानों मे ऐसे मन्त्र फूँके गये, उनसे ऐसा व्यवहार किया गया कि अनायास ही उनमें माशूकाना आदाएँ फूट निकलीं, नाजनियों वाली लजीली नजाकतें खिल उठीं, लचकदार चुलबुली शोखियां उभार पर आ गईं। उनके सहज सुन्दर, सलोने शरीर के प्रत्येक हाव, भाव, से यही प्रकट होता कि कुमार अज्ञात-यौवना सुकुमार कलिका बन गये।

किन्तु इसके कुछ दिन बाद ही उनमे कुछ दूसरी आकांक्षाएं भी प्रकट होने लगी, जो ऊपर वाले भावों आचरणों के प्रतिकूल थीं। पर वैसे वातावरण का अनिवार्य प्रभाव समझ कर चतुर अभिभावकों ने उसके इलाज के लिए सुकुमार किशोरो की मंडली पेश कर दी।

किन्तु कुछ दिन बाद अकल्पित नवीन घटना घटी। किशोरी एक अभिभावक की बेटा थी। यही कोई १३-१४ वर्ष की। देखने सुनने मे काफो अच्छी उम्र के लिहाज से तो निरी अबोध बालिका किन्तु महलो मे पलने बढ़ने के कारण खासी मंजी निखरी हुई, अनुभव प्राप्त, खेली खुली हुई। पौढ़ाओ के भी कान कतरने की जुर्रत रखने वाली, उड़ती चिड़िया पहचानने मे एक अचूक वार करने मे सिद्धहस्त। बात-बात में हँसी खिलखिलाहट के फौवारे छोड़ती जहाँ जा पहुँचती पलक लगते-न लगते तहलका मचा देती। सारा स्थान गूँज चहक उठता। जहाँ से निकल जाती, बिजली सी कौंधा देती। उसकी बातें सुन कर साँप अंधे हो जाते, चिड़ियाँ उड़ना भूल जातीं।

मुग्धावस्था मे अनजाने अनायास शिकार बनते-बनते चंचला-चपला किशोरी को शिकार करने का चस्का लग चुका था। शेर के मुँह मे खून। उसकी नजर माशूकाना अदा करने वाले कुमार पर उस समय पड़ी जब प्रकृति उनमे बरबस पौरुष के इंजेक्शन पर इंजेक्शन दे-देकर उनमें सुरूर पैदा करने में रत थी। कुमार के बरबस बनाये गये कोमल कल्पनातीत कुमारित्व के लजीले लुभावने मुग्धत्व को दब-दब कर उभार पर आने की चेष्टा करने वाले आकर्षक जन्मजात नव पौरुष के मुग्धत्व प्रस्फुरत्व के साथ संमिश्रण संघर्षण ने सहज शिकारिन किशोरी को व्यथित विकल कर दिया। वह हजार जान से कुमार पर कुर्बान हो गई। उसने इस अनूठे शिकार पर तीर चलाया और खुद भी उस

शिकार का शिकार होने के लिए तड़प उठी। शिकारी अपने शिकार के बेचलाये हुये तीर से अनायास पहले ही बिंध गया। और तब अपनी तड़पन मिटाने के लिए उसने जाहिर खुद शिकार होने के लिये अपने को शिकार के सामने हाजिर किया। वैसे तो कलावाज किशोरी जान बूझ कर कुमार की नजरों के सामने थिरकने की चेष्टा करती, किन्तु होली ने उसके काम का तनिक अधिक सुगम कर दिया। उसने रंग-गुलाल से कुमार को रंजित किया और फिर ऐसी उनके गुलाबी नयनों मे धसी कि वहाँ वह गॅसी की गॅसी रह गई। कुमार की रतनारी आँखों मे किशोरी के लुनाई भरे अबीरी रग के पड़ते ही उनके हृदय के प्राकृतिक पौरुष-पूर्ण नेत्र सजग हो उठे। उन्होंने अचकचा कर देखा। एक नई दुनिया उनके सामने रोशन हो उठी, एक नया ज्ञान हो गया, एक विचित्र अनुभव ने उन्हे सराबोर कर दिया। एक अपूर्व, मधुर, मादक सर्वविजयी रस धारा ने उनकी मानस रसना पर प्रवाहित होना प्रारंभ कर दिया। अभी तक कुमार का विहार क्षेत्र एक विशेष मंडली तक ही सीमित था। फागुन की मतवाली किशोरी के रंग के अंजन ने उनके अलस-मदिर नेत्रों को तनिक और खोल दिया, उनमे एक नवीन ज्योति डाल दी। उन्हे एक नवीन सर्व विजयी, प्रबल सेना का पता चला। किशोरी का वार अचूक बैठा, और वह भी शिकार फॅसाते-फॅसाते कुमार का एकदम नया शिकार बन गई। और कुमार को हुआ एक अनूठा अनुभव।

कस्तूरी की सुगन्ध की भाँति किशोरी कुमार की रंगीन होली की लपटें छिपाये न छिप सकी। जागरूक, स्वामिभक्त अभिभावकों सेवकों की भी आँखें आश्चर्य से फैल गईं। नाजनी सरीखे लजीले शुबुक सुकुमार कुमार मे ऐसी आग भी छिपी है, इसकी वे इतनी जल्दी कल्पना भी न कर सकते थे। पर जब

वह आग इतने रंगीले विकराल रूप में प्रकट हो ही गई है, तो उसका भी उपाय होना भी लाजिमी ही है। चुनी हुई कला केलि कुशल कुमारियो की कुमुको को तैयार होते देर कितनी लगती। पौरुष का रसास्वादन करने वाले कोमल कला पूर्ण कुमार की सेवा के लिएएक नई सेना का आयोजन होने लगा। नई मॉग सामने आई। यह तीसरी लत थी। और अभिभावकं के हाथ तीन-तीन शत्र लगे। कुमार किसी अनुभव से किसी विलास से शून्य न रह सके। और मजा तो यह कि ये तीनो साधनाएँ साथ ही साथ चलने लगीं ऐशोइश्रत के ये तीनो तरीके एक ही साथ बरते जाने लगे ये तीन विचित्र, विभिन्न, परस्पर विरोधी धाराएँ एक साथ मिल कर खुशी से सरस रूप मे बहने और अश्रुत पूर्व, अनिर्वचनीय संगम का मजा देन लगी।

हँसते, बिहरते, मौज करते, मजे लूटते सुकुमार-सलज्जशोभा सौन्दर्य की मूर्ति एवं विकासोन्मुख पौरुष-विलास के आगार कुमार दिन-दूने रात-चौगुने बढ़े और यथा समय अपने पैतृक राज-सिंहासन पर आसीन हुए। मजे मे राज-काज चलने लगा। त्रिगुणात्मक विलास-विहार वैभव अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा। और जैसा कि सामाजिक रूप से होना चाहिए, उनका एक विवाह बहुत ही बड़े राजघराने मे हुआ। चॉद-सी रानी साहिबा पधारीं। और साथ मे अनेक-अनेक दासियो, लौंडियो बॉदियो, सेविकाओं खवासिनो, परिचारिकाओ आदि-आदि के अलावा लाई फूल-सी खिली, सुन्दर सुकुमार पॉच-पॉच सखियों को; जो धार्मिक रीति पर तो-थीं एकदम कुँआरी, पर जीवन भर राजा साहब की आराधना पति के रूप में करने के लिए भेजी गई थी। वह भी केवल इसी लिए कि यदि किसी दिन रानी साहबा के दुश्मनो की तबियत नासाज हो जाये और कहीं उसी दिन बाहरी मनबहलाव के

सामानों मे राजा साहब का मन न अँटका रह सके, तो ये पाँचो कुमारियाँ रानी साहबा के बदले मे राजा साहब का मन रमा सके। राजसी ऐशोइश्रत के सबन्ध मे बहुत दूर तक सोच-समझ-कर इन्तिजाम करने की परिपाटी जो है।

समय ने बतला दिया कि राजा साहबा केवल एक ही विवाह के द्वारा अपना सारा लम्बा जीवन बिता सकने वाले महारथी नही हैं। और उनके ऐसे के लिये कुँआरी राजकुमारियां की क्या कमी पड़ सकती थी। दनादन दो विवाह और होकर रहे। और हरबार भावी वधू को अच्छी तरह से समझ-परख लिया गया था। खास तौर पर रूप रंग गढ़न आकर्षण के सम्बन्ध मे खूब कस कर जाँच कर ली गई थी। ऊँचा मामला ठहरा। राजा साहब के बहु-रत्न भोगी संयोगी मन का विचार तो रखना अनिवार्य रूपेण आवश्यक था। और हरबार, हर रानी साहबा के साथ आईं कम से कम पाँच पाँच स्वयंवरी सखियाँ। राजमहल में परिस्तान का समाँ बँधा, हूरो का अखाड़ा जमा, मोना बाजार का नज्जारा नजर आने लगा।

नई चमक दमक ने कुछ कुछ दिन तक मौजी सैलानी राजा साहब के मन को अपनी ओर खीचने का स्वाँग भरा। पर नित नये तमाशो को देखने और रोज ताजे-ताजे रसों का मजा लूटने वाले को भला कब तक एक ही करवट बैठाला जा सकता है! और भला भौंरा फूलो के एक ही गुलदस्ते के साथ किसी शीशे के शो-केस मे कहीं बन्द रक्खा जा सकता है!! और यदि वह प्रेमवश पराग के लोभ मे आकर किसी एक कोमल कमल के कोष मे बन्द होना स्वीकार भी करले, तो नये नये बागो को नवीन नवीन क्यारियों मे खिलने वाली एकदम नई नई अनूठी-अपूर्व कलियों को नित नई ढब से पेश करते रहने के व्यवसाय-व्यापार से अपने जीवन-व्यवहारों को चलाने की कठिन-नाजुक कला में

कुशल उस्ताद भला उसे उस अकेले भोंड़े कमल से बँधा-बिधा क्यों रहने देने लगे। उनकी रोजी और कला मे बट्टा जो लगता है।

महलो के इस परिस्तान में भी राजा साहब ज्यादा उलझे न रहने दिये गये। और शायद उनकी त्रिगुणात्मक विलास-भावनाएँ उन्हें केवल हूरों वाले किसी भी इस्तान-उस्तान मे चैन से रहने न देती। वहाँ का एक सी जीवन उनके अन्य-द्वि-रसाभावों के कारण कल न पड़ने देता।

बाहर मजमें जुटाये जाते, सब तरह के सामान मुहैया किये जाते और चैन की बंशी बजती।

ऐसे थे हमारे छैल-छबीले, मुलायम जवाँमर्द लचीले चुलबुले, मस्तानी माशूकाना अदाओ वाले, कटीले-गँठीले, चुस्त-चुटीले, मौज-मजा वाले हरफनमौला, रंगीले-रमीले राजा साहब।

वे बचपन से हर तरह की हवाओ के झोके खाते रहने के कारण काफी अनुभवी और मिलने मिलाने के फन में उस्ताद हो गये थे। महलो के रहस्य भरे वातावरण से खूब परिचित थे। छोटी रानी के मंसूबे उनसे भला कैसे छिपे रह सकते थे। पहली ठोकर ने उनकी शिकारी शान को तिलमिला दिया। पहली असफलता ने उनमे दृढ़ता ला दी। वे हाथ धोकर पीछे पड़ गये।

वैसे चाहते तो अपने शहनशाही हुक्म के जरिये छोटी रानी से मुझे तलब कर सकते थे। पर इसमे उनकी कला की तौहीनी थी, उनके कौशल की हार थी। इस कारण उन्होंने महलवाली शतरंजी चाल को उसी तरह की चाल से मात देने की ठान ली। उनकी खास दूतियाँ अपने जौहर दिखलाने पर तुल गईं। हवा बाँधी जाने लगी। तैयारियाँ होने लगीं। बातों, पैगामों, तारीफो के बाद तोहफो के दौर चले, फरमाइशों के जानने, पैदा करने को

ख्वाहिशें की गईं। मेरे नन्हे से दिल के सामने लुभावने सुहावने सब्ज बागों के बेइन्तिहा नज्जारे सिलसिलेवार सजाये-बनाये गये। मेरी कल्पना की दृष्टि जहाँ तक जा सकती, वहाँ तक और शायद उसके भी काफी आगे तक सुख-सौभाग्य, विलास-वैभव की हरी भरी क्यारियाँ ही क्यारियाँ देख पड़तीं। ऐसा मति-भ्रम हुआ कि मैं यह भूल गई कि मैं जाग रही हूँ या सुखद-सुनहले स्वप्न देख रही हूँ। मुझे इसका भान न रह गया कि मैं भूतल पर हाड़-मांश के शरीर को लिए जीवित हूँ या संसार की सारी झंझटो से मुक्ति पाकर स्वर्ग का अनन्त-अबाध सुख लूट रही हूँ।

इस कल्पित, कृत्रिम किन्तु मादक, संसार की यथार्थ स्थिति को सर्वथा भुला देने वाले सुख-रस से सराबोर वातावरण मे मैं काफी दिनो तक उड़ती रही। इस बीच राजा साहब कितनी बार महलो मे आये, इसे मैं ही क्या, शायद छोटी रानी भी गिन कर ठीक-ठीक नही बतला सकती। इन महल यात्राओ प्रवासों में राजा साहब को हर एक रानी साहिबा को, तथा उनकी पञ्च-कन्या रूपणी स्वयवरी सखियो को एक-एक, दो-दो बार अवश्य ही निहाल करना पड़ा। और अन्त मे छोटी रानी के चक्रव्यूह को राजा साहब ने इतना तो जरूर भेदन कर लिया, कि मैं उनके सामने पड़ ही गई। वह प्रथम दर्शन मिलन अर्धसम्भाषण जीवन मे भुलाने से भी नही भुलाया जा सकता। वह रस ही ऐसा अनूठा था।

झिलमिल तारे तो न निकल सके थे पर सूरज की झुलसाने वाली धूप भी न रह गई थी। छोटी रानी गुलाबो के फूलों के बीच झूम-झूल रही थी। वहाँ बस मै थी, वे थीं और दो विश्वासी दासियाँ। झूले का पटरा छोटा और कम चौड़ा था। एक ही के बैठने में सिकुड़ने दबने की जरूरत पड़ती। फिर रानी ने विवश

कर मुझे साथ में बैठा लिया था। उनका एक हाथ मेरी कमर से होता हुआ झूले की डोर पर था। मेरा एक हाथ उनकी कमर-पीठ-गर्दन से होता हुआ झूले की रस्सी पर। इसी से हमारे बैठने का कुछ आभास मिल सकता है। पेंगें जोर की तो न थीं, पर थीं बड़ी दिल-ममोस। इत्र-लेवेण्डर के साथ ही फूलों की खुशबू किसी दूसरी दुनिया की बहार दे रही थी। मैं मन्द-मन्द ध्वनि से बांसुरी से बोल निकाल रही थी। रानी स्वर से स्वर मिला कर मधुर-मदिर राग से स्वर्ग को भूतल पर खींचे ला रही थीं।

हम इसी नशीली समां में बेसुध थीं, इतने मे ही बगल की टहनियों को हटा कर राजा साहब का मुस्कराता हुआ चेहरा हमारे सामने प्रकट हुआ। रानी चौंक कर गिरते-गिरते राजा साहब के सुबुक-मांसल हाथ का सहारा पा, झूले के नीचे खड़ी नजर आने लगीं। मेरे हाथ से बाँसुरी छूट कर गिर चुकी थी और हक्की-बक्की हो राजा साहब के कन्धे का सहारा लिए झुकी-लटकी आधी झूलने के नीचे थी और आधी तख्ते की उलझन मे। और राजा साहब खिलखिला कर हँस रहे थे तथा उनके अभ्यस्त हाथ रानी से मुक्त हो, जल्दी-जल्दी किन्तु बड़ी कोमलता से मुझे झूले से सुलझा-खींच कर हरी-हरी दूब पर खड़ी कर रहे थे। कैसे विचित्र भावो से भरे थे वे अनोखे दो तीन क्षण।

विस्मय-विह्वलता की आत्म-विस्मृत करने वाली बिजली की करेन्ट से मुक्ति पाते ही रानी ने अपने अपूर्व कौशल से राजा साहब का स्वागत करने के साथ ही मुझे स्वागत-समारोह के बहाने तुरन्त वहाँ से हटाने की चेष्टा की। किन्तु राजा साहब भी इसकी काट के लिए तैयार थे। उन्होंने बड़ी सफाई से रानी को गाने के लिए और मुझे बांसुरी बजाने के लिए राजी करके

ही छोड़ा। लाख चेष्टा करने पर भी मुझे रानी उस समय वहाँ से टाल न सकीं।

मेरी आँखें उठीं और राजा साहब के दीरघ, अनियारे, श्वेत-श्याम-रतनारे नयनो म जा मिलीं. और मिलते ही ओठो से दबी मुस्कराहट बिखेरते-बिखेरते फिर तुरन्त राजा साहब की मादक नजर वाले हजार मन के भार से नीचे झुक गईं। और लज्जा-सङ्कोच की तथा शेरनी की तरह घूमने वाली रानी की नजरो के बेहद जहरीले भय की उपेक्षा कर मेरे चोट खाये व्याकुल नयन फिर उठे और राजा साहबके मुस्कान भरे नयनो से फिर जाकर मिल ही तो गये। यह क्रम कई क्षण तक जारी रहा। और एक शब्द बिना निकाले ही उन्होने नयनो की शब्द-हीन सब कुछ बुझा देने वाली अर्थ-गम्भीर-भाषा मे पूरी-पूरी बाते कह समझाईं। मेरा हृदय थर्रा उठा।

कुछ देर के विनोद के बाद रानी ने अन्य रानियों तथा महल की प्रतिष्ठित महिलाओं की ऐसी सभा जमवा दी कि राजा साहब को वहाँ से पिंड छुडाकर भागना दूभर हो गया। यदि वे रात भर रहते तो यह छटी जमात रात भर उनको कल न लेने देती, और वह भी उनको खुश करने के नाम पर किये गये मनोरंजक करिश्मों के जरिये ही। और राजा साहब के जाते ही सभा भग हो गई तथा अकेले मे मेरी वह-वह दशा की गई कि मेरा दिल ही जानता है। रानी खुद तो नये शिकारो के फँसाने मे दिन के चौबीसो घटों को लगा देने के लिये तैयार रहतीं, नित नये उपाय रचतीं; पर मुझे पाक-साफ रखने मे बड़ी सतर्क रहती। वे चाहती कि मैं उनके प्रति उसी प्रकार एकान्त भाव से पतिव्रता का निर्वाह करूँ जैसे औरअपने पति के प्रति अनन्य भाव से रखती है। कैसी विचित्र हास्यास्पद विडंबना थी।

राजा साहब से मेरी साँसत की बाते छिपी न रहीं। उन्होंने

फिर उतना खुल कर मिलने की चेष्टा न की। वे मिले जरूर, पर तनिक अधिक सावधान होकर। पर रानी उनसे कहीं अधिक सावधान-सतर्क हो उठी थीं। हमारे मंसूबों पर बराबर पानी फिरता रहता था।

अन्त में कई बार की सफल होते-होते, विफल हो जाने वाली चेष्टाओं के बाद राजा साहब ने आधी रात के बाद छिप कर आने और मन की मुरादों को पूरा करने का निश्चय किया। राजा साहब का यह अनोखा अभिसार मुझे भी बड़ा अजीब-सा, अट-पटा किन्तु सुखद-सा जान पड़ा। और उन्हें शायद इसमें खास मजा मिल रहा था।

आखिर रात तय कर ली गई। रानी को कानोकान खबर न पड़ी। मैंने उन्हें कुछ ऐसी वस्तुएँ खिला दीं कि वे घंटा पहले ही मुर्दे से होड़ लेने लगी। और मैं उछलते दिल को थाम्हे, चंचल आँखें बिछाये राजा साहब के अभिसार की प्रतीक्षा करने लगी। बारह के बाद से मेरी उत्कंठा बढ़ने लगी। एक बजते-बजते उत्कंठा व्याकुलता मे बदल गई। और तीन बजने के पहले ही व्याकुलता ने उत्पीड़क चिन्ता का रूप धारण किया। अन्त में चार के कुछ पहले महल के मंदिर का बूढ़ा पुजारी और दो विश्वासी दूतियों ने कपड़ों की एक भारी-सी गठरी लाकर मेरे पलंग पर रख दी। मैं सहसा चौंक पड़ी। स्त्री के वेश में ये थे राजासाहब। दशा उनकी अच्छी न थी। अर्ध-मूर्छित-स्थिति में थे। साँस जोर-जोर से चल रही थी। मुँह मसला-सा विकृत और भयावह हो रहा था। गालों और ओठो पर दाँतों के दाग पड़े हुए थे। कई जगहो का मुलायम चमड़ा दाँतों और नाखूनों की रगड़ से छिल-सा गया था। सर मे पैर तक के सारे वस्त्र अस्त-व्यस्त और मसले गूँजे जान पड़ते थे। शरीर बेदम और टीसों से भरा बेहाल नजर आ रहा था। मैंने उन्हें ब्रांडी दी।

कुछ उपचार किया गया। और दिन निकलने तथा महलों के खुलने के पहले ही उन्हें चुपके-चुपके वहाँ से हटा देना पड़ा। अभिसार की उस रात भी हम दोनों के मन के अरमान मन में ही मसले पड़े रह गये।

मंदिर के नीचे सुरंग थी। देवता के सिंहासन के ठीक नीचे आकर चोर दरवाजे की सढ़ियां समाप्त होतीं। सिंहासन के उलटते ही आने-जाने का रास्ता खुलता था। महलों के सदर द्वार के बन्द होने के घंटों बाद राजा साहब स्त्री के चौकस वेश में उसी चोर रास्ते से आये थे। पर महल के पहरेदारों, सरदारों ने उन्हें पकड़ लिया और स्त्री समझ कर उन्हें मंदिर के पास वाले कमरे में ले जाकर...... . . भेद खुल जाने के भय से राजा साहब मुँह ढाँपे, होंठ बन्द किये सब सहते रहे। पर सभी बातों की एक-न-एक हद होती है। सात-सात दानवों सरीखे सरदारों की भूख बुझने के पहले ही राजा साहब बेदम हो चुके थे।

जल-विहार का जाल

अल्लढ़ लड़कियों के कोमल कंठ से निकली हुई मधुर मादक खिलखिलाहट से गंगा का किनारा गूंज उठा। मैंने देखा गंगा की धार में अठखेलियाँ करती हुई मेरे पड़ोस की कई लड़कियाँ जल विहार में मगन हैं। उनके शरीर पर की पतली धोती का वस्त्र और झीने-झीने जम्पर का कपड़ा जल में भीग जाने के कारण उनके बदन से बिलकुल चिपक गया है और इस कारण उनका

प्रायः प्रत्येक अंग साफ-साफ झलक रहा है। और इस रीति झीने परदे की नाममात्र की ओट के कारण उनके अंगों का नवीन उठान वाला, उमड़ता बढ़ता, सुकुमार सौंदर्य कई गुना अधिक आकर्षक और मादक हो उठा है। जल विहार की बेसुध बनाने वाली मौज ने उनके चेहरों को खिला रक्खा है, उनके अंग प्रत्यंग को उमंगों से भर दिया गया है।

मुझे आती देख, वे सब एक साथ जोर से हँस पड़ीं। मैं अभी किनारे पर भी न पहुँचने पाई थी कि वे सब सहसा किनारे पर दौड़ आई और इसके पहले कि मैं संहलूँ-संम्हलूँ, उन्होंने मुझे उठा कर जल की धारा में छपाक से डाल दिया। जल मे गिरते-गिरते मैंने देखा, पास ही साहब जी अपने सहचरों के साथ, खड़े मुस्करा रहे है।

× × ×

'सब लड़कियाँ गली मे तैयार खड़ी हैं, सिर्फ तुम्हारी ही देर है माधुरी! जल्दी चलो, नहीं तो स्नान करके लौटने मे रात हो जायगी।' बंसू ने धीरे से मेरे पास आकर कहा।

मैंने उसकी ओर ध्यान से देखा। वह मेरी ओर भाव भरी दृष्टि लगाये, मुस्करा रहा था। मैंने तनिक अनमने भाव से उत्तर दिया—'मैं तो न जा सकूंगी, मेरी तबियत अच्छी नहीं जान पड़ती।'

बंसू का मुंह उतर गया। आगे बढ़, अपने दाहिने हाथ से मेरी कलाई को थाम्ह, मेरी नाडी देखने का उपक्रम करते हुये उसने आश्चर्य चकित भाव से कहा—'तुम्हे कुछ भी तो नहीं है। न ज्वर है, न गरमी ही। नाड़ी मजे में चल रही है। सोने की सुस्ती होगी, नींद की खुमारी। चलो चलो। गंगा की शीतल वायु मन मस्त कर देगी। तबियत हरी हो जायगी'।

उसके मुख पर मंद मधुर मुस्कान खेल रही थी। आँखे शरारत से चमक रही थी।

मैंने हाथ हटाते हुए, तीव्र दृष्टि से देख, मुँह बनाते हुये उत्तर दिया—तुम डाक्टर तो हो नहीं। न तुमने वैद्यक ही सीखी है। तबियत का हाल क्या जानो। जाओ मैं तो न जा सकूँगी। सर भारी है।'

वसू ने बहुत हठ की, अनेक तरह से समझाया-फुसलाया, पर मैं उस समय गंगा स्नान करने न गई। अन्त में मुँह बनाता सर नीचा किये, वसू चला गया।

किन्तु अभी दस मिनट भी न बीतने पाये थे कि वह फिर लौट आया। इस बार वह अकेला न था। उसके साथ थीं मेरे पड़ोस की, मेरी हमजोली की तीन-चार लड़कियाँ। उन्होंने तेजी से आकर मुझे पकड़ लिया और तरह-तरह की बातें करती हुई मुझे घसीट ले चलीं। एक ने माता से पूछ कर जम्पर-धोती सँभाली, तीन मुझे जबरदस्ती खींच-खींच कर आखिर गंगा किनारे ले ही गईं। वहाँ पहले से ही कुछ और सखियाँ जल विहार में मगन थीं। वे मेरे पहुँचते न पहुंचते किनारे पर दौड़ आईं। उनके शरीर पर से टपकने वाले जलबिन्दु और उनके दौड़ने से धारा में उठने वाली लहरे एवं छपाछप की मादक ध्वनि एक अजीब बहार दे रही थी। दूसरे ही क्षण मैं गंगा की धार मे थी।

मेरे सभल कर तेज धारा में खड़े होने पर उन सब ने मुझे चारो तरफ से घेर लिया और मेरे ऊपर जल उछालती हुई हँस-हँस कर मुझे छेड़ने-बनाने लगी।

एक ने मुझे गुदगुदाते हुए कहा 'आ क्यो नहीं रही थीं? किसका इंतिजार था? कोई आने वाला था क्या?'

दूसरी—'नखरे थे! नखरे!! जरा खुशामद की चाह थी। हम लोग जाकर हाथ-पैर जोड़ें, बिनती-प्रार्थना करें, मनावे-

पथावें, हा हा खायें, बलैया लें, तनिक इनके चन्द्रमुख की प्रशंसा करें। अब.......जोर पर जो है।'

सब ठठा कर हँस पड़ी। मेरे ऊपर छींटों की बौछार होने लगी। मैं अपने दोनों हाथों से अपनी आँखों, अपने कानों को छिपाने की व्यर्थ चेष्टा करती हुई उछल-कूद रही थी, इधर-उधर घूम फिर कर आत्म रक्षा करने में व्यग्र थी।

इसी समय तेजी से कई अंजुली पानी मेरे मुँह पर मार कर तीसरी बोली—'आज कल-लड़की देखने वालों का ताँता बँधा है। शायद इसके आगे होने वाले 'वे' प्रथम दर्शन-सम्भाषण के लिए आये हों या आने वाले होंगे।'

चौथी ने मेरे पास आकर मुँह पर से हाथ हटाते हुए मीठे तीखे स्वर में कहा—'यह रंग है! क्यों री पाखंडिन!! मुझसे भी अपने होने वाले 'उनके' आने और मिलने-बोलने की बातें छिपा गई। कैसे हैं तेरे होने वाले 'वे'?'

सब खिलखिला कर हँस पड़ी।

मैंने तनिक खिझलाहट-झुँझलाहट के भाव से कहा—'चलो हटो! मुझे यह सब व्यर्थ की बातें अच्छी नहीं लगतीं। ज्यादा बकबक करोगी.....तो....।'

इसी समय साहबजी हमारे पास आकर कोमल कंठ से बोले—'ज्यादा तंग न करो। तनिक साँस ले लेने दो।'

लड़कियाँ कुछ शान्त हुईं। मेरी जान बची। कपड़े तनिक ठीक कर मैं एक ओर हट गई।

इसी समय गुनराज ने आकर मुझसे पूछा—'माधुरी! आज आ क्यों नहीं रही थीं? क्या शादी-वादी के सम्बन्ध में तुम्हें देखने के लिए कोई आये थे?'

मैंने तीखे स्वर में उत्तर दिया—'व्यर्थ की बातें अच्छी नहीं लगतीं। मेरी तबियत ठीक नहीं जान पड़ती थी।'

साहब जी ने बीच मे ही हँस कर कहा—'गरमी के कारण सुस्ती रही होगी। अब सब ठीक हो जायगा। स्नान मे कैसा मजा आ रहा है।'

\+ + +

देर तक जलविहार चलता रहा। छेड़-छाड़, छींटे-फव्वारे, हँसी मजाक कैसे कम होते। इसी के लिए ही तो साहब जी ने इस पार्टी का संगठन-सा कर रक्खा था। उनके सहायक सहचर थे—गुनराज, उनका छोटा भाई बंसू और मदन। बंसू की उम्र वैसे १६ बरस से कम न थी, किन्तु उसके अत्यन्त नाटे कद, दुबले-पतले बदन और नन्हे-से मुँख के कारण कोई भी उसे ११-१२ से अधिक नही कह सकता था। पास-पड़ोस की उभरने वाली लड़कियों को जुटाने, फुसलाने, समझाने, एकत्र करने में वह बहुत सिद्धहस्त था। मोहल्ले का लड़का होने और भले घर में जन्म लेने के कारण हरएक घर में उसका बेरोक-टोक आना-जाना रहता था। उसके बोल-चाल, बरताव-स्वभाव के कारण भी मोहल्ले-टोले की बूढ़ी-स्यानी स्त्रियाँ उस पर दया-ममता रखती थी। उसने किसी को दादी, किसी को अम्मा, किसी को बुआ, किसी को चाची, किसी का मामी बना रक्खा था, और प्रत्येक घर की लड़की को वह जिज्जी कह कर बहन बना लेता। वह चुलबुला, खिलवाड़ी और मसखरे स्वभाव का था। दौड़ दौड़ कर काम भी कर देता। इस कारण भी लड़कियाँ-स्त्रियाँ उससे सदा प्रसन्न रहतीं। एक प्रकार से मोहल्ले भर की उठती जवानी वाली लड़कियों का वह जमादार-सा ही था।

और साहब जी का न पूछिये। वे थे तो पचास के लगभग, किन्तु खाने-पीने, दवा-उपाय में सदा सतर्क रहने, एवं स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अधिक से अधिक जागरूक-प्रयत्नशील रहने के कारण उनका शरीर काफ़ी हृष्ट पुष्ट एवं सबल-सुदृढ़ जान

पड़ता था। उन्हें विश्वास था कि यौवन के प्रथम सोपान पर पदार्पण करने वाली लड़कियों के सहवास से युवावस्था अक्षुण्ण और अक्षय बनी रहती है। इस कारण वे सदा ऐसी लड़कियों की तलाश में रहते जो अपने नये उभार पर हो। किन्तु मान मर्यादा बनाये रखना उनके लिए अनेक कारणों से बहुत आवश्यक था। इस लिए वे छिप कर टट्टी के ओट शिकार खेलते और इसी काम के लिए उन्होंने बंसू को मिला रक्खा था। और बंसू को वस मे रखकर काम निकालने के लिए उन्हो उसके बड़े भाई गुनराज एवं उनके अभिन्न हृदय मित्र मदन को अपनी शिकारी-गोष्ठी मे शामिल कर रक्खा था।

साहब जी की दो पुत्रियाँ भी थी; तान कोई १०-११ बरस की और शान कम से कम १३ बरस की। तान-शान के जरिये लड़कियो को बुलाने-फँसाने के बजाय वे लड़कियों के माता-पिता, भाई-बन्धुओं की आँखों में दिनदहाड़े धूल झोंकने में अधिक सफलता प्राप्त कर सके थे। साहब जी की लड़कियों के रहने के कारण मोहल्ले के किसी भी भले आदमी को अपनी लड़की को गंगा-स्नान आदि के लिए भेजने मे विशेष आपत्ति न होती।

साहबजी बंसू के जरिये लड़कियो को स्नान के लिए एकत्र करते, शान-तान के जरिये खेलने-बैठने-घूमने के लिए बुलवाते और धीरे-धीरे फुसला कर अपना स्वार्थ साधते।

कई वर्षों से यह क्रम चल रहा था। अनेक अबोध, भोली-भाली, जीवन की नवीन बहार में बेसुध, मदमाती लड़कियों को विगाड़ चुके थे। बोलने-समझाने-मिलाने-बरगलाने में सिद्धहस्त होने के कारण एक बार अपने जाल मे फँस जाने पर फिर वे किसी भी लड़की को अपने से नाराज न होने देते। इस कारण बाद में भी उनका कुछ-न-कुछ सुखद सम्बन्ध शिकार में फँसी

हुई लड़कियों से बनाही रहता और समाज के भय के कारण कोई भी लड़की मुँह खोलने की हिम्मत न करती।

मेरे बड़े भाई की बदली अभी हाल ही में उसी स्थान पर हुई थी, और संयोग से हम लोग उनके इतिहास प्रसिद्ध मोहल्ले में आ फँसे थे। मैं अपनी आयु के पन्द्रहवें बरस में थी। यौवन की प्रथम बाढ़ मेरे अंग-अंग से फूटी पड़ती थी। भला, साहबजी की नजरों से कैसे बच सकती। हमारे आने के कुछ ही दिन बाद साहबजी ने मेरे भाई से हेल-मेल बढ़ा लिया और हमारे मकान पर उठना-बैठना शुरू कर दिया। इधर, बंसू भी हँसता हुआ आता और माता से तथा मुझसे भी खूब घुल-घुल कर बातें करता, हमारा सौदा-सुलुफ ला देता, और हर काम में मदद देने को तैयार रहता। दो ही चार दिन में हम से वह खूब घुल-मिल गया। वह मुझे जिज्जी कहते अघाता न था, मेरे लिए दिन-रात दौड़ने में उसे थकावट-हिचक न होती। मैं उसे अपने दुलारे-प्यारे छोटे भाई की तरह मानने लगी। उस समय मुझे न तो उसकी उम्र का अंदाज था और न उसकी काली करतूतों का पता ही।

तान-शान का भी आना-जाना और घंटों एक साथ खेलना, मन बहलाना शुरू हुआ। वे अक्सर मुझे खींच कर अपने घर ले जातीं। पहले तो कभी-कभी साहबजी दूर-दूर से हँस-मुस्करा-कर मुझसे बातें कर लेते, फिर जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-ही-वैसे वे अधिक-अधिक चाव से देर तक मुझ से मीठी-मीठी बातें करते और नाना प्रकार की चीजें देकर, एवं प्रलोभनों में फँसा कर मुझे अपनी ओर आकृष्ट करने लगे।

समय बीता, और मैं पास-पड़ोस की लड़कियों से हिल-मिल गई, और धीरे-धीरे बंसू द्वारा साहबजी की जल-विहारवाली पार्टी में शामिल कर ली गई। पार्टी में मैं मिल तो गई, किन्तु दो-ही

चार दिन में मुझे प्रायः सभी रहस्यों का पता चल गया। मैं सतर्क हो उठी।

इधर कुछ समय से साहब जी का मेरे घर पर आना-जाना बेहद बढ़ गया था। वे किसी-न-किसी बहाने से हमारे यहाँ ऐसी चीजें भेजते रहते; जिनमें पैसा तो कम लगे, किन्तु जो मुझे खास तौर पर पसन्द आती थी। उन्होने बड़े कौशल से बातों-ही-बातों मे मुझसे और मेरे घर वालो से इन बातों का पता लगा लिया था कि मुझे खास तरह पर कौन-कौन-सी वस्तुएँ पसन्द हैं। वे मुझे खुश करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे। तान शान का आना जाना और मुझे हठकर अपने यहाँ ले जाना भी बिला नागा रोज होने लगा। घर पर साहबजी मुझसे हँस-हँस कर बाते करते। जल विहार रोज ही चलता था। उस समय भी साहबजी का खास झुकाव बात करने का और विशेष आकर्षण देखने-मुस्कराने का मेरी ही ओर रहता। मैंने यह भी देखा कि मेरी अन्य सहेलियो से साहबजी की ये बातें छिपी नहीं हैं, और वे सब मतलब भरी निगाहों से मुझे देखती हैं और रहस्य भरे ढंग से मेरी ओर देखकर मुस्करा पड़ती हैं।

मैं और भी अधिक सतर्क हो उठी। मैंने उनके घर जाना कम कर दिया, उनसे बच निकलने की कोशिश में रहती और जल-विहार से पिंड छुड़ाने के उपाय सोचने लगी। अभी तक मैं एक दम शुद्ध-निष्कलङ्क थी, किन्तु दुनिया की बातों से बिल्कुल बेखबर होऊँ सो भी बात न थी। सुन-जानकर मैंने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

आज मैं स्नान करने जाना न चाहती थी। और बंसू को मैंने टाल भी दिया था, किन्तु हमजोलियो से न बच सकी। और जिसकी आशंका अर्से से लिए, सतर्कता पूर्वक बचती चली आ रही थी, वही अवांछनीय घटना घट गई।

जल-विहार जोरो पर था। संध्या की लाली धीरे-धीरे पुँछती जा रही थी और चन्द्रमा की किरणो की सुखद, शुभ्र ज्योति तीव्र होती जा रही थी। कैसा अपूर्व दृश्य था, मादक वातावरण। हौले-हौले, अनदेखे ढंग से साहब जी मेरे पास आ गये थे और कभी-कभी एकाध अंजुली जल मुझ पर छिड़क देते थे। मैने दो-तीन बार तो न देखने जानने का बहाना बना कर टाल दिया। किन्तु जब वे धीरे-धीरे कुछ प्रशंसा-सूचक शब्दो को दबी जबान कहते हुए बराबर छींटे चलाते रहे, तब तो मैं सहन न कर सकी। किन्तु उस समय मैने कुछ कहना या उलझना उचित न समझा। मैं एकाएक तेजी से दूर हट गई। वे अपना-सा मुँह लेकर रह गये।

इस समय तक संध्या की लाली लुप्त हो चुकी थी और शुभ्र ज्योत्स्ना अपने पूरे जोम मे चमकने लगी थी। जल की हजारों लहरियो पर चन्द्रमा की प्रतिच्छाया विचित्र छटा प्रदर्शित कर रही थी। धारा मे ऐसा जान पड़ता, मानो लाखो हीरे लुढ़कते हुए जगमगा रहे हो। मैं इस दृश्य को देखने मे मगन थी। इसी समय साहबजी की आवाज सुन कर सहसा चौंक पड़ी। सुना, वे पीछे खड़े कह रहे थे, माधुरी तुम चन्द्रमा की इस फीकी प्रतिच्छाया की माधुरी मे कैसे इस प्रकार लिपट गईं? तुम्हार चन्द्रमुख तो इन सबसे कहीं अधिक प्रभा विकीर्ण कर कर रहा है।

मैं एक दम घूम गई। देखा, वहाँ न तो तमू आदि हैं और न अन्य लड़कियाँ ही। मैं तनिक भयभीत-सी हो गई, घबरा कर इधर-उधर देखने लगी। मैं साहबजी से अलग रहने की सनक मे कुछ ज्यादा दूर चली गई थी। इसी बीच एक नाव आकर मेरे और अन्य लड़कियों के बीच मे खड़ी हो गई। इसी से उन लोगो के जाने का मुझे पता न चल सका। और शायद उन लोगो ने समझा कि मैं चिढ कर उनसे बिना बतलाये ही चल खड़ी

हुई हूँ। और उन्हें धोखे मे डालने मे बसू आदि का भी हाथ हो सकता है।

जल्दी-जल्दी जल से निकल कर मैंने सूखे कपड़े पहने और गीले वस्त्रों को यो ही निचोड़-लपेट कर मैं तेजी से चल खड़ी हुई। साहबजी भी मेरे साथ मुझे फुसलाते-मनाते चले। आज वे पूरी तरह से खुल गये थे और प्रेम के नाम पर मेरे शरीर का चाहते थे। मै डर गई। जिस स्थान पर वे पार्टी को जल-विहार के लिये लाते थे, वह दूर एकान्त मे था। रास्ते में भी दूर तक कोई चलता नजर न आता था। रात का सन्नाटा। मुझे कँप-कँपो छूटने लगी।

इसी समय साहबजी ने मेरी बगल मे आकर मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए मीठे स्वर मे कहा—'मैं तुम्हे प्राणो से भी अधिक चाहता हूँ। सदा तुम्हे ।'

मैंने उनके हाथ को एक झटके के साथ दूर हटा कर रुखाई से कहा—'आपको शर्म नहीं आती। आपतो मेरे पिता .... ।'

बीच ही मे मेरे शब्दो को काट कर वे बोले—मैं तुम्हारा मित्र हूँ। सच्चा प्रशंसक, पूरा भक्त अनन्य प्रेमी, दृढ़ उपासक। मैं तुम्हारे लिए अपने प्राणो तक को निछावर कर सकता हूँ।

मैंने क्रोध-क्षोभ मे भर कर कहा—'कैसी गदी बाते करते है आप। मैं तो आपको बड़ा सज्जन समझती थी, पूरे साधु। आप का आज यह कैसा नीचता-पूर्ण व्यवहार है?'

साहबजी ने चट से बढ़ कर मेरे दोनो हाथ पकड़ लिये और अपनी ओर खींचते हुए बोले—'यह सब, रहने दो। जीवन मे अपने-अपने स्थान पर सभी कुछ चलता है। मैं तो तुम्हारा मित्र और प्रेमी हूँ। तुम्हारे रूप ने पागल बना रक्खा है। अब तो दया करो। मैं सदा सब तरह से तुम्हे संतुष्ट करता रहूँगा। और किसी को कोई बात मालूम न हो पायेगी।'

मैं एक क्षण तक तो आश्चर्य-भय से किंकर्तव्य-विमूढ़-सी हो गई। किन्तु जैसे ही उनकी गर्म-गर्म स्वॉस मेरे मुख पर लगी, वैसे ही मैं सावधान हो गई। मेरे मस्तिष्क में बिजली सी दौड़ गई। मुझे ज्ञान हो गया कि यदि इस समय क्षण भर भी मैंने शिथिलता या कायरता की कि फिर मेरा सर्व नाश ही है। मैंने सहसा जोर का झटका देकर अपने दोनों हाथ छुड़ा लिये। पहले मेरे असावधान रहने से वे खुद असावधान हो गये थे। जैसे ही वे फिर तेजी से मेरी ओर बढ़े, वैसे ही मैंने भरपूर जोर लगा कर उनके माथे पर अपने दोनों हाथ दे मारे। मेरी चूरियाँ चूर-चूर हो गईं। कुछ टुकड़े उनके माथे पर भी लगे। हाथों का वार भी काफी जोर का पड़ा। वे इसके लिये बिल्कुल तैयार न थे। उनके पैर भी सहसा ऊँचे-नीचे मे पड़ गये। फलतः वे धड़ाम से नीचे गिर गये।

मैं बेतहाशा भागी। मुझे दौड़ने कूदने का खासा अभ्यास था। तेजी से मैं उस ओर भागी जहाँ से मनुष्यों के आने-जाने की आहट मिल रही थी।

—:०:—

बचकानी प्रेम

कश्मीरी सफेदी और पंजाबी गुलाबी मेरे चेहरे, बदन और बनावट पर उमड़-उमड़ कर लहरा रही थी। उम्र तो बस तेरह बरस के पार जाने की तेजी मे थी, पर शरीर के निगोड़े अंग असली उम्र से कहीं अधिक तेजी से झपट कर मुझे बरबस १५ १६ के लगभग घोषित कराने से बाज न आते थे। मैं खुश भी

थी और परेशान भी। खुशी होती प्रशंसकों की खास अंदाज भरी नजरों के इतनी जल्दी फिरने-बदलने को देख-ताड़-समझ कर। परेशानी में पड़ जाती सिर्फ वर्षों पहले ही भोलेपन से भरी नादान बचपन की छूटों-सहूलियतों-उन्मुक्तताओं-रियायतों से इतनी जल्दी, अनायास, अनजाने धीरे-धीरे किन्तु निश्चित तेजी से वंचित होते जाने की सजग जानकारी के कारण। किन्तु न तो क्षण-क्षण बढ़ने, गदराने, प्रस्फुटित, परिवर्धित, परिलक्षित होने वाले दईमारे बरजोर अंगों ही पर मेरा कुछ बस चलता था न स्वयं सेवक, सर्वतोभावेन आत्मसमर्पक, स्वतः आकर्षण परिधि में आ नित चक्कर काटनेवाले खुले-मुँदे प्रशंसकों की राहजोर, रस विष भरी, तीखी तिर्छी नजरों पर ही मेरा कुछ जोर था, और न मुँहजोर मन की अयाचित खुशी-खीझ को ही मैं रोक थाम्ह सकती थी। मजबूरी हालत में मदमाते अंगों की तेज चाल के झोंकों में नशीली नजरों के सहारे मनमथ खुशी-खीझ के जोरदार अनन्तगामी पेंगों पर बेतहाशा हिलकोरे लेती मन-बेमन तीव्र गति से बढ़ी चली जा रही थी। ऐसे ही संधिकाल में मेरे वृद्ध सरल, शान्तिप्रिय पिता की बदली हुई। मैं उनकी एकमात्र संतान थी। माता वर्षों पहले स्वर्ग को सिधार चुकी थीं। हम दोनों पिता-पुत्री साज-सामान लेकर नये स्थान में आ रहे। और यहीं से मेरे लिए एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। वह भी केवल विशुद्ध बचकानी प्रेम-प्रपंच से ही। पिता सीधे, पुराने ढर्रे के आदमी थे। वेतन बस यही चलतू ढंग का था, जो मामूली छोटे दर्जे के सद्गृहस्थ को किसी तरह जीवित रखने भर के लिए ही काफी समझा जा सकता है। पिता ऊपरी आमदनी से परहेज रखते थे, केवल आगे मिलने वाले जन्म और लोक के बनाव सुरक्षा के विचार से ही। हम दोनों की गुजर हो तो जाती, पर बड़ी सँभाल-सरेख करते रहने पर ही। और इसी कारण हमें

एक ऐसा घर लेना पड़ा जो मुझ-सी बच्ची-सयानी होने वाली लड़की से लदे वृद्ध के मान-बचाव के उपयुक्त भी हो और किराया भी जिसका उस वेतन के अनुकूल ही हो।

बड़ी खोज ढूँढ़, दौड़-धूप के बाद एक मकान मिला, जिसमें चार हिस्से थे। दो में दो गृहस्थ रहते थे, तीसरे मे स्वयं मकान मालिक। और चौथा हमारे लिए विधि विधान से खाली था। सहन, नल आदि सभी एक मे थे, सब के साझे मे। मकान मालिक के कोई बाल-बच्चा न था। थी केवल एक अधेड़ स्त्री। अन्य दो किरायेदारो मे से एक के नन्हें-नन्हे तीन बच्चे थे और दूसरे के मेरी हमजोली की एक लड़की और उसका एक दुबला-पतला भाई, मुन्नाप्यारे। हम लोग आते ही इन तीनो परिवारों मे घुलमिल गये। और यहीं वह बचकानी प्रेम पचड़ा उठा जो वर्षों बीत जाने पर भी आज तक मेरे शहजोर मन को बरबस मथा करता है।

मुन्नाप्यारे था तो १४-१५ बरस का, किन्तु दुबले बदन और ठिगने कद एवं नन्हे-मुन्ने भोले-बचकानी चेहर ने उसकी असली उम्र को देखने-समझने मे काफी कम बना रक्खा था। वह ग्यारह-बारह बरस का नन्हा-अबोध बालक-सा जॅचता था। उसके पतले सुरीले कण्ठ ने उसके आरोपित नन्हेंपन को और भी खूब फबा रक्खा था। इन सब के ऊपर थी उसकी चुलबुली नाजुक अदाएं और बालक-सुलभ लचीली कलाएँ, जो उसे किसी कदर बड़ा मानने ही न देती थीं।

उस मकान में पैर रखते ही मुन्ना प्यारे की बहन सुन्नो झिझकती-ठिठकती आई और दबी तिरछी नजरो से इधर उधर का राज लेती मेरे पास खड़ी हो गई। हमजोलीपन ने जोर मारा। हमारा संकोच मिनटो मे कम होते होते काफूर हो गया। सेकंडों में झिझक झटके के साथ दूर हो गई और देखते-देखते हम दोनो

ऐसी घुल-मिल गई जैसे जन्म से एक साथ रह-खेल रही हो। सुन्नों ने मुझे सामान ठीक से सहेज कर उतरवाने और करीने से सजाकर रखने लगाने में दिल खोल कर मदद दी। वहाँ के स्त्री-पुरुषों का परिचय दिया, पास पड़ोस का हाल बतलाया, कई बातों से सावधान किया और बारबार तमतमाये हुए, हँसीभरे, उत्सुक मुखको लेकर सिकुड़ते सिकुड़ते आने और सतर्कता पूर्वक तेजी से आँखें नचाकर देख लेने के बाद भाग जाने वाले अपने चुलबुले भाई मुन्ना प्यारे से मिलाया। और यह मिलन कुछ ऐसी अनोखी घटा का रूप पकड़ गया, जिसने जीवन में एक अजीब, अमिट रंग भर दिया।

+ + +

"कैसी मजेदार जोड़ी है।" कहती हुई सुन्नो हमारे सामने आकर खड़ी हो गई और खिलखिला कर हँसने लगी। मैं बालिका-विद्यालय के जलसे मे जाने के लिए तैयार हुई थी। मुन्ना प्यारे हमे पहुंचाने के लिए सज-धज कर आया था। इसी समय डाकिये ने एक सचित्र पत्रिका लाकर दी। उत्सुकता वश हम दोनों एक तख्त पर पास पास सट सट कर बैठ, नवीन पत्रिका के चित्र तन्मय होकर देखने लगे। हम चित्रों के देखने मे इतने तन्मय थे कि बेजाने मुन्ना प्यारे का एक हाथ मेरी कमर के उधर से होता हुआ दूसरी ओर निकल कर पत्रिका के पृष्ठों को थाम्हने का सफल-विफल प्रयत्न कर रहा था। और इसी कारण अनायास उसकी पूरी बाँह की लपेट मे मेरी कमर आ फँसी थी। दूसरा हाथ उसका आपसे आप योंही आकर मेरे मोढ़े पर ठहर जाता था। चित्र देखने के चाव-उत्साह मे हम दोनों की कनपटियाँ एक में जुट-सी गई थी। बगलों तथा अन्य कुछ अंगों का मिल-सट जाना स्वाभाविक ही था। पर हम दोनों में से किसी को भी इन मे से एक बात का भी ख्याल तक न था। ऐसी ही स्थिति में

सुन्नो ने सहसा आकर हमे चौंका दिया। उसकी बात ने मुझे सचेत किया। मैंने होश संभाला, और सकुचाते-सिटपिटाते तनिक एक ओर को खिसक गई। मुन्नाप्यारे भी हड़बड़ा कर कुछ उधर को हट गया।

और एक दूसरे को उत्सुक, उत्फुल्ल नेत्रो से देखते हुए हम तीनों खिलखिला कर हँस पड़े। और इसी मतलब-बे-मतलब की उन्मुक्त अल्हड़ हँसी के बीच मेरी रस-खोजी आँखें मुन्ना-प्यारे की शरारत भरी, चमकीली, कटीली आँखों मे जा मिली। और दोनो के मुहजोर नयन एक-दूसरे मे समा गये। दोनो तरफ से कुछ-किसी प्रकार के सन्देशे चमके, कुछ ऐसे अनजाने संकेत हुए, जो उस अवस्था और स्थिति मे अनायास व्यक्त होकर भी गुप्त ही रहते हैं, जो स्पष्ट समझे जाकर भी बेसमझी के अनन्त भँवर मे डाल देते हैं, जो खुल कर गुदगुदी पैदा करने के साथ ही 'कहीं कुछ भी तो नही है' की जोरदार घोषणा करते है।

\+ \+ \+

हँसते, झेंपते, प्रफुल्लित-विकसित होते हम दोनो एक रिक्शे में बैठकर बालिका-विद्यालय चले। मुन्ना-प्यारे बीच मे था। जगह दो व्यक्तियो के लिए भी काफी नहीं थी। फिर हमारे तो थे तीन-तीन चुलबुले शरीर। माना कि सभी थे महज बचकाने। पर शान्त रहना इस उम्र में भला किस भकुए के बस की बात रहती है! किसी तरह कसर-मसर करते लद गये और सिकुड़ते, खसकते, चमकते, सरकते, मटकते, झुकते, संभलते तेजी से आगे बढ़े जा रहे थे। एक प्रकार से लाडला, नटखट मुन्नाप्यारे मेरी और सुन्नो की गोदी मे ही समा-सा उचक-फुदक रहा था और ऐसे मौके पर ऐसी सरस-विरस स्थिति मे जो खुशी खीझ के फव्वारे छूटते हैं उनकी सुखद सिहरन पैदा करने वाली, अम्बर-

तम तक पैठनेहारी उन्मादक रसीली तरी से मेरा रोम-रोम सराबोर हो रहा था। कश्मकश का कहना ही क्या! कुछ तो सचमुच तंगी के कारण, और कुछ मजाक भरी चुहल, शरारत के सबब से चुलबुला मुन्नाप्यारे कभी मेरी ओर झुक कर मेरे अंगो को दबाता-ठेलता-मसलता-रगड़ता और कभी सुन्नो को ढकेलता-दबोचता। जब मेरी ओर उसकी कृपा का बहाव होता, तब मेरे कुछ ऐसे अंग अनायास, बरबस दल-मल उठते जिनमे स्पर्श मात्र से गुदगुदी पैदा होना, सिहरन का आना, रोमांच हो जाना, सनसनी का दौड़ आना और सुखद-पीड़ा भरी फुरहरी का होना सहज-स्वाभाविक बात होती है। और संयोग से मेरे सबन्ध मे तो इस प्रकार के सुखद-संकोचवाली टीस-समावेशित वांछनीय अनुभूति का यह एकदम पहला ही अवसर था। इसके पहले किसी भी कुमार, किशोर या युवक द्वारा मेरे नवविकसित. किसलय-कोमल, उमंग-उत्साहपूर्ण उभारवाले अङ्गो को न हुआ था। खिलवाड़ी शरारती मुन्नाप्यारे का शायद वैसा और कोई भी गूढ़ मतलब इस प्रकार की रेल-पेल करने का न था। पर इस चिरस्मरणीय यात्रा के प्रारंभ मे ही "कैसी मज़ेदार जोड़ी है" कह कर सुन्नो ने मेरे रसीले सुख-स्वप्न देखने वाले मत्त चंचल मन को ऐंड़ लगा दी थी, वह इस समय मुझे एक विशेष भावना जगत में सरपट लेजा कर कुछ-का-कुछ सोचने, समझने के लिए विवश किये हुए थी। सुन्नो के मजाक ने मेरे दिमाग मे एक नये स्वर्ग की सृष्टि कर दी थी। और इस सुखद-पीडामय संघर्ष ने उसमें और अधिक उत्तेजना ला दी। नवीन भावना ने अनूठे रस का संचार किया। मुन्नाप्यारे की मजाक भरी चुलबुलाहट मुझे वेहद मजे देने लगी। मै उसुक-पुसुक कर खुद भी उसी की ओर बढ़ जाती और संघर्ष की तीव्रता मेरी सुखानुभूति की प्रगाढ़ता मे उत्तरोत्तर वृद्धि करती। आज, इस समय सड़क के

खराब होने कारण रिक्से के चलने मे जो दिक्कत होती, जो हिलकोरे उठते वे मेरे नव-सुख-अनुभव को सौ गुना बढ़ा देते। और मेरी अन्तरात्मा कामना करने लगी थी कि इस स्वर्गोपम यात्रा का कभी अन्त ही न हो, जीवन भर मैं इसी सुख का रस लूटती रहूँ।

पर चाहने से इच्छा की पूर्ति पूरी तरह से होती कहाँ है। और अभी मै अपने इस नये सुखद रस का भरपूर आस्वादन कर भी न पाई थी कि दन्न से बालिका-विद्यालय का सदर द्वार आपहुंचा और हम सब को उस रिक्शे के झूले से नीचे उतर कर कठोर भूमि पर आ जाना पड़ा। मैंने इतना जरूर किया कि लौटते समय भो किंचित रस बिन्दुएँ प्राप्त हो सके, इस पावन पुष्ट विचार से रिक्शेवाले को वापस ले जाने के लिए रोक लिया। ज्यादा देर रुकने से शायद पैसे ज्यादा देने पड़ें, इस आशङ्का से सुन्नो ने इसे पसन्द नही किया। पर मुझे तो चस्का-सा लगा था, मैंने वापसी मे सवारी न मिलने या मँहगी मिलने का बहाना कर और वापसी के किराये के सारे पैसे खुद अकेले अपने पास से देने का वादा कर अन्त मे रिक्शेवाले को रोक ही दिया।

जलसा शुरू हो चुका था। हम तीनो एक ओर बैठ गये। जल्दी में सुन्नो मेरे और मुन्नाप्यारे के बीच में आ गई थी, यह मेरे लिए विष बुझे बाण की नोक के चुभने के समान कष्टकर घटना हो गई। नये रस-ज्ञान ने मुझे वैसे ही मदहोश बना रक्खा था, इस नये विष ने मुझे इतना जला दिया कि मैं तिल-मिला उठी। मन जलसे की किसी भी बात मे न रम-जम सका। कुछ क्षण किसी तरह अपने मन पर पत्थर-सा रख फूलती-पिचकती दबी-दबाई योंही बैठी रही। पूरे जलसे की कोई भी बात मुझे तनिक भी न रुची। अन्त में मितली का बहाना कर

मै उठी और मुन्नाप्यारे का साथ चलने के लिए हाथ पकड़कर खींच ले गई। मुन्नो को एक तो जलसे के कार्यों में बेहद मजा आ रहा था, दूसरे उसे मुझ पर किसी तरह का शक भी न था, इससे वह वहीं बैठी रहा। मै मुन्नाप्यारे को लेकर बाहर निकली, पानी लेकर कुल्लियाँ कीं, पान लेकर खाये और बाग मे जाकर टहलने लगी। मुन्नाप्यारे को विश्वास हो गया था कि सचमुच मुझे मतली आने लगी थी इस कारण से जलसे के मनोरंजक कार्यों मे दिलचस्पी लेने पर भी वह मेरे साथ बना रहा। हम लोगो में योंही हँसी-मजाक की बातें होती रहीं। पर मन रहने पर भी मैं अपने असली भावों को उस पर इतनी जल्दी सहसा प्रकट न कर सकी। संकोच, लज्जा, अटपटापना, उपहास का भय आदि न जाने कितने और कैसे-कैसे भावों ने मेरे मुँह को बन्द रक्खा। पर आँखों ने, हावभाव ने, चेहरे की आभा ने शायद मुन्नाप्यारे ऐसे अबोध अल्हड़ बालक से भी बहुत कुछ प्रकट कर ही तो दिया। और ज्यादा नहीं तो उसे इतना आभास तो मिल ही गया कि मैं जलसे-तमाशे से उसके सहवास, उसके निरर्थक-मामूली बोलों को कहीं ज्यादा पसन्द करती हूँ। और शायद इसी संकेत-ज्ञान के कारण वह बगीचे मे मेरे साथ खुशी-खुशी टहलता रहा, कभी मेरे कंधे से, कंधा भिड़ाकर, कभी मेरे हाथ को छिपे-छिपे चुपके-चुपके अपनी अँगुलियों से छू-सहलाते हुए, कभी आँखों में आँखे डाल हँसते-मुस्कराते हुये और बहुधा बेमतलब की, बे-सिलसिले की मीठी बातें करते हुए।

और इसी प्रकार १५-२० मिनट फुर्र से उड़ गये, हमें पता तक न चला। और शायद घण्टों इसी तरह बीत जाते और हमें पता तक न चलता, यदि मुन्नो आकर अपनी तीखी आवाज और उत्सुक ढंग से हमे सचेत कर कठोर दुनिया मे हमे बरबस

खींच न लाती। हमारे लिये वह व्यग्र होकर जलसे से उठ आई थी, और खोजती हुई बगीचे मे आ पहुँची थी। विवश होकर मुझे उनके साथ जलसे का मजा लूटने के लिये वापस भीड़ भाड़ मे जाना पड़ा। पर सीटों पर बैठते समय मैंने इस बार सतर्कता से काम लिया। पहले-पहले मुन्नाप्यारे को ठेलकर आगे बढ़ाया, फिर मै बढ़ा और इस प्रकार मै दोनों भाई बहिन के ठीक बीच मे जा डटी। और इस तरह बैठने के बाद मैं उतनी अशान्त-उन्मनी न थी, जितनी की पहले थी। अब तो मेरे अंग मुन्नाप्यारे के अगों को छू सकते थे, मेरी आँखे अपने नुकीले किनारों से मुन्ना प्यारे के रस-विष भरे नेत्रों से मिल लड़ सकते थे। अब हमारे नाज भरे राज चल रहे थे, और उधर जोर पर थे बेदाद भरे जलसे के कार्य पर अब वे उतने नीरस न रह गये थे, कारण कि मेरी फरियाद के सुने-समझे जाने का रास्ता आसानी से निकल आया था।

× × ×

'आहा! यह रही जय-माला!! अब तो तुम मेरी सखी के साथ ही कुछ और भी "मैने बात पूरी होने के पहले ही मुन्नो का हँसी भरा मुँह मसल कर बन्द कर दिया। पर मुन्नाप्यारे बगल मे खड़ा हँस-मुस्करा रहा था। जलसे मे मुन्नाप्यारे को एक बहुत ही बढ़िया पुष्पमाला मिल गई थी। वह उसे छिपाये रहा और जब हम लोग रिक्शे के पास आकर उस पर सवार होने लगे, उसी समय उसने चुपके से एकाएक मेरे गले मे उस माला को डाल दिया। माला के डाले जाते ही मुन्नो ने हँसकर ऊपर वाले शब्द कहे। मै संकोच से कुछ खीझ तो उठी, पर मुझे खुशी भी बेहद हुई। तो मेरे मन का आकर्षण उधर भी प्रभाव डाल रहा है! मैंने चट से माला उतार दी।

हम सब उसी प्रकार बैठकर रस के झूले में पेंगें लेते अपने स्थान पर आ गए। रात काफी जा चुकी थी। पिता उत्सुकता पूर्वक राह देख रहे थे। मैंने उन्हें भोजन कराके सुला दिया। कहने के लिए मैं भी लेट रही, पर आँखों में नींद फटकी तक नहीं। तरह-तरह के विचारों ने ऊधम मचाना शुरू किया। उन्हीं सुखद-टीसवाली बातों की याद बार-बार आती रही।

दूसरे दिन से हम दोनों नव-प्रेमियों में अभिनय चलने लगा। मन जोरों पर थे दोनों के, पर भय, लज्जा, संकोच झिझक, अनुभव-हीनता आदि हमारे मन की उमंगों और हमारे यथार्थ कार्यों के बीच बड़ा व्याघात उपस्थित कर रहे थे। मन मिलन-बोलने के लिए तड़पता, पर मुन्नाप्यारे को सामने पाकर उसकी ओर ठिकाने से देखने का हियाव न होता, उससे बोलने की हिम्मत न बँधती। कभी मैं उसके पास जा पहुँचती, तो वह लाख कोशिश करते रहने पर भी मुझसे खुलकर मिल-बोल न सकता। वैसे हम आपस में काफी मिलते हँसते-खेलते-खुलते रहने की अथक चेष्टा करते। मैं मुन्नाप्यारे के लिये व्याकुल रहती, मुन्नाप्यारे मेरे लिये पागल रहता।

इधर कुछ दिनों से मकानवाली न जाने क्यों मुझसे खास तौर पर और शायद मेरे सबब से मुन्नाप्यारे से यों ही चिढ़ी-सी रहती। वह मौके-बेमौके ताने देती, नसीहत करती, फबतियाँ कसती, शिकायत के तौर पर बड़बड़ाती और मेरे खिलाफ अजीब-अजाब-सी बातें करती। हम दोनों यदि चलते-चलते कहीं पास आ निकलते, तो उसकी नजर हम दोनों पर पड़ ही जाती और उसके मुँह से कुछ ऐसे तड़पाने-खिझाने-झिझकाने-परेशान करनेवाले शब्द निकल जाते और वे भी इस बेढब तेजी और तर्ज से कि हम लोग उनकी अवांछनीय, असह्य चोट से तिलमिला

जाते और किक लगी फुटबाल की तरह वायु-वेग से एक-दूसरे से दूर कहीं-के-कहीं जा रहते। उसी के डाह भरे कटीले, कड़वे बोलों के कारण अनेक बार हम दोनों मिलते-मिलते बिछुड़ गये; हमारे मन के अरमान निकलते-निकलते ज्यों-के-त्यों बने रह गये। और आज उस सुनहले, मिर्चेले बचकानी युग की अतृप्त अनुभूति की सुखद-टीस भरी याद से दिल कैसा-कैसा तो हो उठता है!!

\+ \+ \+

त्योहार का दिन था। मेरे यहाँ खास काम दिन में था खाने-पीने का। मुझे और मुन्ना को मरने को भी फुर्सत न थी। ऊपर से मकान वालों की बिला जरूरत की, कारण-रहित ईर्ष्या भरी विषैली चुभीली डाँट। वह अपने-आप हम लोगों की अभिभाविका बन बैठी थी और हर समय अपने पुरखिनपने के तेजाबी फव्वारे से हमारे गुलाबी जीवन में आवले पैदा करती रहती थी। आज तो खास तौर से अपने सुरीले सामयिक राग से दिन भर हमारी अन्तरात्मा तक को भरपूर तृप्त करने का उसने बीड़ा सा उठा रक्खा था। गनीमत यह थी कि कई बार उसे अपने पति की पुकार के कारण विवश होकर मार्चे से हटना पड़ा और उन्हीं सुअवसरों पर मुझे मुन्ना-प्यारे की सरस झाँकी मिलती रही, एवं उसकी चुहल भरी अदाओं से हमारे दिल के फफोलों पर शान्ति-दायिनी मरहम की तह पड़ती रही।

राम-राम कर किसी तरह भोजन समाप्त हुआ और हमें अपने बाहरी गढ़ में जाकर रक्षा की सुविधा करनी पड़ी। सलाह पहले ही कर ली गई थी। खा-पीकर सभी सयाने आपस में गपशप करने के लिए जुट पड़े। पुरखिनों ने पेट के तकाजे के पूरा होते ही दुनिया भर के स्त्री-पुरुष-युवा-वृद्धों के चरित्रों की सही-गढ़ी आलोचना का अखण्ड, अक्षय पुण्यप्रद यज्ञ आरम्भ

किया। और पान, तम्बाकू आदि की काफी व्यवस्था कर, मौका निकाल हम नये उम्र-उमंग-उड़ान-ऊटपटॉग-विधि वाले जीव उड़नछू हो केलि-कुँजो मे जा जमें। दिन भर की कसर तो निकालनी थी ही। हम लोग हमजोली वाले हाहा-हीही मे दीन दुनिया को भूल चले।

किन्तु इस अल्हढ़पन की इस धारा में मुझे कुछ अभाव-सा भासित हो रहा था, अटपटा-सा लग रहा था, मन कुछ मचल-मचल पड़ता था, तबीयत ऊब-सी उठती थी। जैसे टटके पानी से पेट गले तक भर जरूर उठा हो, पर प्यास बुझी न हो; जैसे शीतल जल धारा के द्वारा मिलने वाली शान्ति-तृप्ति के लिए वॉछा इस समय भी प्रबल ही हो। और मैंने देखा, जैसे मुन्ना प्यार के हृदय मे भी ठीक मेरे जैसी ही हूक उठ रही हो। वह भी पूरी तरह से छक कर उस मंडली का आनन्द न लूट सकता हो। कोई घण्टे भर के अभिनयपूर्ण रसास्वादन के बाद मैंने मुन्ना प्यारे से चले जाने का संकेत किया, वह जैसे पहले से ही तैयार बैठा हो। तुरन्त खिसक गया चुपके से। एक-दो ने रोकने का क्षीण प्रयत्न भी किया तो वह साफ बहाना बना गया। और फिर मैंने कुछ ऐसा चक्र चलाया कि देखते-देखते वह गोष्ठी भङ्ग हो गई। और मैं तो काम का बहाना बनाकर पहले ही रफूचक्कर हो गई थी। जब सब चले गये तो कुछ देर बाद मै मुन्नाप्यारे की खोज में निकली। पर शामत के मारे भाई-बहिन साथ ही मिल गये। मजबूरी हालत मे मैं दोनों को साथ लेकर अपनी अतृप्त भावना की पूर्ति के लिए फिर रास रचाने केलिकुञ्ज में जा पहुंची। पहले से मुझे कहीं अधिक मजा मिल रहा था। पर मुन्नो इस समय मिश्री के बीच बॉस की फंस-सी खल रही थी। किन्तु मैं मजबूर थी। कुछ देर इस प्रकार फिर रस-बिरम मे डूबते-उतराते रहने के बाद मैंने और मुन्ना प्यारे ने बड़े कौशल से मुन्नो को वहॉ

से टाला। मुन्नाप्यारे उसे लेकर घर में गया और उसे किसी काम में उलझा कर फिर वापस आ गया। अब हम दोनों बचकाने प्रेमी स्वच्छंद हो गए। पर मजे की बात यह हुई कि अब हम दोनों न जाने किस अज्ञात बन्धन में ऐसे जकड़ गये कि न तो पूरी तरह से खुल कर मन की बातें कर रहे थे और न मन की मुरादों को पूरा करने के लिये सफल चेष्टाएँ ही कर सकते थे। और एक खास बात और थी। जब कभी मुन्नाप्यारे साहस बटोर कर कुछ कहने या करने का हौसला बाँधता तो मैं सिहर उठती, झिझक पड़ती, छटक जाती, नटती, नकारती, बिगड़ती, मचलती हटती और उसके सारे हौसलों पर पानी फेर देती, उसके साहस तोड़ देती। और जब कभी मैं हिम्मत बाँधती, उफान में आती, उड़ान भरने का हियाव करती, तो मुन्नाप्यारे न जाने क्यों सिकुड़ जाता, टाल बता देता, चौकन्ना होकर भय-भीत-सा इधर-उधर आँखें नचाकर दबक-सा रहता, दूर-सा निकल जाता, छाँह तक न छूने देता और अपनी सहमी हुई व्यथित-व्याकुल भाव-भंगियों द्वारा मेरे उफान पर घड़ों शीतल जल उँडेल देता, हियाव को नष्ट कर डालता, हिम्मत हारने का समाँ बाँध देता। और इसी अजीबोगरीब असफलता भरे विचित्र सफल अभिनय में सारा अवसर निकल गया। और अन्त में एक बार जब हम दोनों ने किसी बात पर एक साथ ठहाका लगाकर एक दूसरे की आँखों में आँखें डाल, पास-पास आ आपस में अनजाने रूप में हाथ मिलाये और उमंग भरे दोनों हृदय बाँसों उछल कर एक दूसरे के समीप आ ही रहे थे कि बाहर से किसी के धमधमाते पैरों की भयावह आहट ने और उसी के साथ ही एक कर्कश स्वर ने दोनों हृदयों को सहसा दहला दिया। जैसे हिरनी के पीछे शेर की दहाड़ हुई हो। दोनों दिल तड़प कर मिले जरूर, पर टकरा कर उचाट ले दूसरे ही

क्षण कोसों दूर जा पड़ने के लिए ही। कैसा भयावह, दुखदायी क्षणिक सुखद संमिलन था वह !! और दूसर ही क्षण मुन्नाप्यारे तड़प कर आड़ मे जा छिपा और मेरे सामने प्रगट हुई मेरा नाम नाम रटती हुई मकान मलकिन की डरावनी डायन की-सी मूर्ति। उसने मुझे देखते ही गरज कर कहा 'बड़ी अजीब लड़की है। उधर घर सूना पड़ा है !! काम के लिए बेचारा बुड्ढा चीख रहा है, और तू इधर ..यहाँ ! क्या कर रही थी ! किससे घुलघुल कर रस भरी बातें कर रही थी ?' और जबान के तेजी से चलने के साथ ही, चल रही थीं और भी ज्यादा तेज चाल से उसकी मटर-सी नन्ही किन्तु शरारत से सराबोर विष भरी आँखे। वह मेरे केलि-कुंज के रसीले साथी को खोज निकालना चाहती थी। मेरा तो बुरा हाल था। सारे बदन मे सनसनी दौड़ रही थी। कंप-कॅपी छूट रही थी। भय, लज्जा ने बुद्धि एकदम दबा रक्खो थी। मैं शायद उसकी डॉट के झाँसे में आकर बहुत कुछ कुबूल देती पर क़िस्मत अच्छी थो। मुन्नाप्यार ऐसा छिप गया था कि जल्दी मे उस पर शत्रु की नज़र न पड़ सकी। और संयोग से उसी समय मेरी जोरदार बुलाहट ऊँचे स्वर मे होने लगी। मकान वाली को जल्दी के कारण तनिक भी मौका खोज का न मिला। और दूसरे ही क्षण पुन्ना आकर उसे और मुझे लेती हुई वहाँ से चली गई। मै बाल-बाल बची। सर को बला टली। पर मन के अरमान पूरे होते-होते रह ही गये।

× × ×

त्योहार का दिन बीत गया कुशल से, पर रात न बीतने पाई खैरियत से। भोजन का आयोजन मेरे वृद्ध पिता ने किया था। रात के समय कीर्त्तन का प्रबन्ध किया मकान के दूसरे दोनों किरायेदारों ने। आठ बजे के बाद से कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। शुरू में सभी उसमें उत्सुकता से सम्मिलित हुए। किन्तु जैसे-

जैसे समय बीतता गया और वृद्धों-प्रौढ़ों को रस आता गया, वैसे-ही-वैसे बचकाने प्राणियों का मन उस भजन-कीर्तन से उचटता गया। और अन्त मे दस बजते-बजते हम सभी धीरे-धीरे उससे अलग होकर इधर-उधर चले गये। मुन्ना प्यारे हौले-हौले खिसका और घूम-फिर कर खुली छत पर जा पहुंचा। मुन्नो भी उड़ दी थी। पर वह निद्रादेवी की शरण में जा रही। मेरा मैदान साफ था। मैं भी आहिस्ते से छूमन्तर हुई और इधर-उधर की टोह ले, चक्कर दे, सोधी छत पर जाकर सुख की साँस ली। शायद मुन्नाप्यारे को विश्वास था कि उसको खोज करती मैं छत पर पहुँचूँगी ही। वह बड़े तपाक से मेरे स्वागत के लिए आगे बढ़ा। फिर तो हम दोनो घुलघुल कर बातें करने में ऐसे तन्मय हुए कि दीन-दुनिया की सुध-बुध भुला बैठे। झिझक तो छूट ही चुकी थी। प्रेम-संभाषण का प्रारंभिक प्रयत्न जोर से कर रहे थे। हँसने, मुस्कराने, सहलाने, गुदगुदाने, खेलने, खिझाने, रूठने, मनाने का भी अभ्यास तेजी से चला रहे थे। पर उससे आगे जाने का हियाव न पड़ता था। कई बार प्रयत्न किये, पर भय, संकोच, लज्जा आदि ने बीच में आकर सारी चेष्टाएँ विफल कर दीं। और ऐन मौके पर कभी मुझे किसी के आने की आहट-सी सुन पड़ती, कभी मुन्नाप्यारे को कुछ शक हो जाता, कभी मैं नट जाती, कभी वह झिझक पड़ता। और इसी तरह बार-बार प्रयत्न करते-करते रात का एक बज गया। अन्त मे हमने भरपूर जोर बाधा और चाहते ही थे कि ..कि इसी समय सहसा अंधेरे छत पर टार्च की चौंधिया देनेवाली जगमगाती तेज रोशनी फैल गई। हम दोनों पत्थर की प्रतिमाओं की भाँति उस ज्वलन्त प्रकाश की तीव्र धारा के बीच जैसे-के-तैसे रह गये। और दूसरे ही क्षण मकान वालों की चिल्लपों मे आसमान गूँज उठा। हम भी साव-धान हुए। मूर्छा भंग हुई। मुन्नाप्यारे तड़प कर सीढ़ियों पर जा

पहुँचा और लुड़कता-सा नीचे जाकर अपने कमरे में विलीन हो गया। मैंने भी भागने की चेष्टा की, किन्तु उस राक्षसी के चंगुल से बच कर न निकल सकी। बड़ा कोहराम मच गया। भीषण काण्ड उपस्थित हो गया।

+ + +

क्या-क्या हुआ, क्या-क्या कहा सुना गया इसे तो कैसे बतलाऊँ! पर हमें वह स्थान दूसरे ही दिन छोड़ देना पड़ा। और तब से आज तक मैं मुन्नाप्यारे से न मिल सकी। पर उसे भुलाना मेरे बस की बात नहीं है। मैं इस समय सफल गृहस्थिन हूँ, दो बच्चों की स्नेहमयी माता, एक दफ्तर वाले बाबू साहब की नवेली, दुलारी, विश्वस्त पत्नी। और अगर ईमानदारी की बात पूछिये, तो आज भी चंचल छोकरे की बाँकी झांकी मेरे आँसू भरे नेत्रों के सामने समय-समय पर झलक दे जाती है और मैं सब कुछ भुला कर उसी युग में जा पहुँचती हूँ; कल्पना के पंखों पर चढ़ कर ही। हाँ, इतना तो विश्वास मेरा कर ही लिया जाये, कि मैं मन और भावों से जितनी ही पतिता और पापिष्ठा हूँ, तन और कायां से उतनी ही शुद्ध, संयत और पवित्र हूँ; एक दम अछूती, बिल्कुल बे-दाग, निष्पाप, निष्कलङ्क। उस अघटित घटना के बाद मैंने अपने बरजोर अगों पर भी उतना ही कठोर नियत्रण रक्खा जितना कि शहज़ोर चंचल मन पर संयम। बचकानी नये अनुभव-शून्य प्रेम ने कड़ी चोट पहुँचाकर मुझे जीवन भर के लिए सजग, सचेत, सावधान, सुदृढ कर दिया। पर उस याद निगोड़ी पर मेरा कोई वस नहीं चलता! अब भारीभरमकम शास्त्र चाहे जो व्यवस्था निकाले और सहानुभूति शून्य, संवेदना-हीन, शुष्क समाज अपनी सहस्रों सदियों पुरानी सुदृढ़ शृंखला में जकड़ा चाहे जैसी यंत्रणापूर्ण आज्ञा घोषित करे!!

एक बात और बता देना जरूरी जान पड़ती है। मेरे हटते ही लोगों को यह जानकर आश्चर्य भी हुआ और समाज को मनोरंजन की सामग्री भी मिली कि वह अधेड़ मकान वाली असलमें मुन्नाप्यारे के पीछे बेतरह पागल हो उठी है। मेरे पीछे केवल इसीलिए पड़ी रहती थी कि उसे विश्वास हो गया था कि मेरे मैदान में रहते उसका प्रेम-प्रभाव मुन्नाप्यारे पर तनिक भी नहीं पड़ सकता। कठोर सत्य प्रत्यक्ष होकर रहता है। अन्त में बात साबित होकर रही। मुन्नाप्यारे वहाँ से हटाया गया। पर सुनती हूँ, वह इतना बौखला गया है कि आये दिन वह कोई-न-कोई रोमांस रचता रहता है; जगह-जगह प्रेमपचड़े खड़े करता रहता है। समाज उससे बेजार हो उठा है; वह समाज से परेशान रहता है। बचकानी-प्रेम उसे फल न सका।

जीवन से भी भारी एक रात

रुनझुन का विवाह तो हो गया था, पर वह रहती थी अपने पिता के पास ही। जानि ऊँची थी। पिता मेडिकल-कालेज में कुछ थे। खास प्रभाव वाले। गुट-बन्दियों में भी छक्के-पंजे चलाने में निपुण। आमदनी काफी अच्छी थी। बन्धी हुई मोटी रकम महीने-महीने अपने आप हाजिर हो जाती। रहते सादे पर वैसे कुछ ही अच्छे ढंग से। नौकरी पक्की थी। फिर चिन्ता किस बात की होती। रुनझुन उनकी एक मात्र कन्या थी। दुलार-प्यार होना ही चाहिये था। समाज के नपे-तुले नियमों में जकड़े रहने

के कारण विवाह तो बेटी का कर ही दिया। पर उसे विदा न किया। शायद विवाह के अवसर पर जो हौसले निकलने से रह गये थे, उन्हे गौने के मौके पर पूरा किये जाने की हवस जोर बाँधे थी।

रुनझुन बड़ी उमंगो में पली थी। प्यार-दुलार की पेंगो पर से उसकी उषा के सुनहले सुख के दिन आगे बढ़े थे। गुलाबी फूलो की सुरभित, सुकोमल, चुनी हुई पंखड़ियों के ढेरो से आच्छादित राजमार्ग से मलयानिल के सुखद झोकों के सहारे मौज मे वसन्तो की बहारे लेते हुए उसके उमंग भरे स्वप्निल जीवन के कोमल वर्ष रस-रास की ओर उन्मुख हुए थे।

कहते है कि उत्साह, प्रशंसा एव समुचित साधन यदि डायन को भी मिल सके, तो वह भी समय पर सौंदर्य मे परियो को मात कर सकती है। और गोरे-देशो मे सभी को पता चल गया है कि मिस्टर जीगफ्रीड इन्हीं उपायो के द्वारा मामूली-से-मामूली युवती को सिनेमा-स्टार बना देता था। फिर रुनझुन तो थी केसर-सी गोरी, कंचन-सी ओपदार, मक्खन-सी कोमल; साँचे मे ढली सुगढ़ मूरत-सी। नाक-नक्शा भला-सा ही। आँखे कुछ बड़ी पर बहुत ही नुकीली, रस-भरी, और शोख-चंचल। और मुस्कान का तो बस कहना ही क्या! मधुर तीखी कटार से बढकर काट करने वाली। जिसकी ओर उड़ती नजरो से देखकर मुस्करा दे, बस वह वहीं-का-वहीं आपा-खोकर पत्थर बना रह जाये। और इन प्राकृतिक विशेषताओ के साथ ही रुनझुन को मिला अगाध स्नेह, सुख-सौंदर्य के सभी अप-टू-डेट साधन, और नई सुसाइटी का उफान लाने वाला मादक वातावरण।

पर दैवयोग समझिये अथवा और कुछ भी। इन सब घातक उन्मादक बातों के होते हुए भी रुनझुन थी, अपने पंद्रहवे वर्ष को पार करते-करते तक नैतिक रीति पर सर्वथा शुद्ध, धार्मिक दृष्टि

से घोर पवित्र शारीरिक रूप में एकदम अछूती, सामाजिक भाव से बद्ध-कोमल कलिका मात्र।

विवाह के पहले ही उसने अपने भावी वर को देखा था, और लड़के ने अपनी होने वाली जीवन-सहचरी को। संयोग से दोनों ही सुन्दर, सुडौल और सुसंस्कृत निकले। रुनझुन का मन मान गया। लड़के की कल्पना मानो साकार रूप धारण कर सामने मूरत की तरह प्रकट हो गई हो। वे एक-दूसरे से सतुष्ट हो उठे। जोड़ी खूब मिली। बड़े-बूढ़े भी निहाल हो गये। विवाह के अवसरों पर जो मीठे, सुखद, क्षणिक मिलन संयोग आये, उसने दोनों के अंगों में पुलक-प्रकंपन भर दिया, मनों में गुदगुदी पैदा कर दी, गुरुजनों के संकोच के कारण बरबस संयत-नीची आँखों को कभी-कभी तिरछी होने के लिये विवश-चंचल कर डाला और एक अपूर्व मादक रस का व्याकुलता लाने वाला अतृप्तिकर आस्वादन कराया।

और विवाह के बाद बारात के चले जाने पर रुनझुन का प्यासा मन नाना प्रकार के अनन्त सुखद दृश्य उपस्थित करने और नये-नये ताने-बाने तैयार करने में लीन रहने लगा। न जाने कितने जीवनों की कल्पना की गई। कितनी नन्हीं-सी दुनियों की रचनाएँ हुईं। न जाने कितने प्रकार की गृहस्थियों के बनने-बदलने के अवसर कल्पना जगत में आये और विलीन हुए। रुनझुन अपने रंगीन भविष्य के असंख्यों चित्र खींचने में व्यस्त रहने लगी।

+ + +

होली हो चुकी थी। पर उत्सव की बहार जारी थी। रुनझुन के पिता होली के तीसरे दिन काम के फेर से शहर से बाहर गये हुए थे। माता कुछ बीमार-सी थीं। घर की बूढ़ी नौकरानी थक-

थका कर बेदम हो सो गई थी। बड़े घर में एक प्रकार से सन्नाटा-सा था। केवल रुनझुन जाग रही थी। और मौज मे झूमती-खिलती रूपमोहन से मजेदार बातों में उलझ रही थी। बागीचे की एक कुंज में पुष्पों की मदिर मादक मधुर सुगंध से सने, चन्द्रमा की झिलमिल किरणों से आलोकित दोनों अजीब मस्ती मे बेसुध थे।

रूपमोहन उसके एक दूर के रिश्तेदार का अवारा पुत्र था। देखने मे खूब सुन्दर, गठीला, रोबीला जवान। साहबी ठाठ से रहने वाला। अमीराना शान की ऐंठ दिखाने मे सिद्धहस्त। बातो से ही हजारों-लाखो के वारे-न्यारे करने मे चतुर। ईश्वर के दिये हुये तेज दिमाग को ऐंड़े-बेंड़े ढंग पर इस्तेमाल करने मे अपने कौशल की पराकाष्ठा समझने वाला। सुरा, सौंदर्य, सुखोप-भोग का छककर आस्वादन करते रहने में ही जीवन की सार्थकता मानने का कट्टर विश्वासी। अपने बिगड़े हुए रईस ऐयाश पिता के दिवालिये हो जाने के बाद उसने अपने रिश्तेदारों और जान-पहिचान वालो को ठगने मूँड़ने का व्यापार शुरू किया था।

रूपमोहन को रुनझुन की उठती जवानी और उसके पिता के जमा किये हुये रुपयों ने अपनी ओर आकृष्ट किया। मॅजे हुए खिलाड़ी की तरह रुनझुन के पास आने के महीनों पहले उसने लासे लगाने शुरू किये। रुनझुन के अनुभवी पिता भी उसके झाँसे में मे आ गये। उन्हे विश्वास हो गया कि रूपमोहन एक बड़ी कम्पनी में खासी आमदनी और अच्छे अधिकार वाले पद पर है। भेंटों-उपहारों के रूप मे उसने अच्छी-अच्छी वस्तुएँ भेजीं भी काफी। और महीनों बाद जब वह रुनझुन के मकान पर होली के त्योहार में आया, तो घर भर ने उसे आँखों पर बिठाया।

नाते-रिश्ते में भाई-बहन का-सा सम्बन्ध होने के कारण रुनझुन के माता-पिता ने रूपमोहन को अपनी सुन्दरी पुत्री से खुलकर मिलने-बोलने से रोकना जरूरी नहीं समझा। और उन भेंटो-उपहारो आदि का भी जादू था। फिर मॅजे खिलाड़ी रूप ने इन अवसरो का भरपूर लाभ उठाया। होली के चौथे दिन उसने रुनझुन की माता और बूढ़ी नौकरानी को बेसुध-बनाने, गहरी नींद मे सुलाने की दवा धोखे से खिलाकर मैदान साफ कर लिया। और इन गिने-चुने दिनो मे उसने अपनी लच्छेदार बातो और अचूक घातो की लपेट मे रुनझुन को ऐसा फॅसाया कि वह अपने विवाहित सुखी जीवन के सारे सुनहले भविष्य को भूलकर रूपमोहन के साथ रसकेलि मे रात भर निमग्न रहने मे ही जीवन का सार समझ बैठी।

• और उस रात के बाद दूसरे दिन दोपहर को जब उसके पिता बाहर से लौटकर आये तो उन्हे दुनिया ही बदली हुई मिली। उनकी दुलारी पुत्री बिन-सूॅघी कली न रह गई थी। उनकी पत्नी और नौकरानी भी अपने पूरे होश मे न थी। और उनकी गाढ़ी कमाई का जो पैसा घर पर साने, जेवर और नकद के रूप में था, वह काफूर बन कर उड़ चुका था। और उसके आदर, स्नेह, विश्वास तथा गर्व का उच्च आधार रूपमोहन कहाँ अलोप हो गया इसका पता खुफिया पुलिस भी लाख चेष्टा करने पर भी न लगा सकी।

एक रात मे कितना परिवर्तन हो गया !!

रुनझुन के गौने की ताबड़तोड़ चेष्टा की गई। ससुराल वाले चौंके। पहले तो गहरी रकम के लालचने प्रभाव दिखलाया। पर सारी बातें विस्तृत रूप धारण कर उनके कानो तक कई तर्ज

में पहुँचने लगीं। कुछ तो समाज के भय ने धक्के दिये। और ज्यादातर नये कारणों के पैदा होने से बढ़े हुए लेन-देन के प्रश्न के विकट रूप ने पीछे ठेला। वर पक्ष वाले दूषित बहू को अपने घर ले जाकर अपने कुल को कलंकित करने के लिए सहज में तैयार न हुए।

रुनझुन का गौना होते-होते रुक गया। वह अन्त मे पिता के घर रह ही गई।

❀ ❀ ❀ ❀

विधि विधान की विचित्रता। रुनझुन की माता ने बुढ़ापे के पास पहुँचते-पहुँचते ताबड़तोड़ एक-एक कर पाँच साल में तीन बेटों को जन्म दिया। बेटो की किलकारियों से घर गूंज उठा। मुरझाई हुईं आशाएँ लहलहा पड़ीं। जहाँ एक 'नाम लेवा पानी देवा' के लिये माता-पिता तरस रहे थे, वहाँ तीन-तीन लाल प्रकट हो गये। घर जगमगा उठा। माता-पिता निहाल हो गये। कुल का दीपक बुझते-बुझते सदा के लिये तिगुनी ज्योति से दीप्त हो उठा। पर रुनझुन का प्रकाशमान भविष्य अंधकारपूर्ण हो गया।

❀ ❀ ❀ ❀

समय तो रुकता नहीं। रुनझुन के समझदार पिता ने उसे कुछ ढंग से पढ़ा-लिखा कर कहीं किसी स्कूल-संस्था में ठिकाने से लगा देने का उपक्रम किया। पर लाड़ली पुत्री उस ओर ज्यादा सफल न हो सकी। पर तो भी किसी तरह रुनझुन को एक दूसरे शहर के अच्छे कन्या-कालेज में लड़कियों की देख-रेख का एक स्थान दिला दिया गया। और जब तक उसकी उमड़ती-बढ़ती जवानी कायम रही, तब तक उस कालेज की कमेटी के सदय सदस्यों ने उसे बराबर तरक्की ही देना ठीक समझा। पर जवानी से ढाल पर उसे दूसरी संस्था की शरण

लेनी पड़ी। और एक-एक कर वह कई कन्या-संस्थाओं में भ्रमण कर रही है। वह सदा उस रात को बिसूरती रहती है जो उस के सारे जीवन से भी कहीं अधिक भारी, ज्यादा लम्बी, बेहद बोझिल हो उठी है।

प्रेम-विलास में साझा

जाड़े के मारे बदन के अन्दर का खून तक जमा जाता था। रात के साढ़े तीन बजे थे। ओलों की बौछार अभी-अभी बन्द हुई थी। बूँदा-बाँदी इस समय भी चल रही थी। ऐसे ही भीषण काल में किसी की फटे-बाँस-की-सी कर्ण-कटु तेज आवाज मोहल्ले भर में गूँज उठी। वह चिल्ला रहा था—'दाई जी! ओ दाई जी!! बड़ी जरूरत है दाई जी!'

एक घर में बच्चा होने वाला था। शाम से मैं वहीं मदद में थी। दो बजे रात लौटी थी और गरम पानी से हाथ-पैर धो, कपड़े बदल कर लेटी ही थी कि आँख लगते-न-लगते यह दूसरी बला आ धमकी। दो-चार बार की पुकार पर मैंने ध्यान न दिया। पर जब वह बराबर पन्द्रह-बीसबार लगातार चिल्लाता ही रहा, तब तो उसे उत्तर देना आवश्यक हो गया। मैंने कहला दिया कि तुम जाओ, दाईजी कुछ देर बाद आयेंगी। वह बड़ी कठिनाई से टला।

मैंने फिर आँख बन्द कर करवट बदल निद्रा-देवी की शरण

लेनी चाही। मेरे बदन का पोर-पोर टूटा जा रहा था, रग-रग में टीसें उठ रही थी, सर फटा जाता था, आँखें जल रही थीं, मन-प्राण बेचैन थे। विश्राम और निद्रा से ही मेरी हालत सुधर सकती थी। मैं एकदम खाट पर पड़ जाने से बच सकती थी। और मैं इसी चेष्टा में थी कि दो-तीन घंटे चुप-चाप सोकर आराम कर लूँ।

पर आज ग्रह कुछ ज्यादा खराब जान पड़ते थे। अभी मुझे झपकी आही रही थी कि किसी ने तनिक रोबीले ढंग से पुकारा· 'ओ दाई जी ! जरा सुनिये तो !'

मेरी नींद हवा हो गई। ये गजाधर बाबू थे, सरकारी दफ्तर में बड़े बाबू, मोहल्ले के थानेदार और डाक्टर के दिली दोस्त।

झुँझला कर उठ बैठी। मेरा शरीर साथ न दे रहा था, पर करती क्या ? विवश थी। पाँच ही मिनट मे तैयार होकर मैं सड़क पर पहुँच गई। गजाधर बाबू छाता ताने मेरे साथ-साथ चले। मैंने बहुत कहा कि मुझे छाते की जरूरत नहीं है, पानी भी वैसा कुछ ज्यादा नही बरस रहा है, मै भीजूँगी नहीं। पर वे न माने। मेरे सर पर छाता लगाये. मेरी बगल मे बराबर बने रहे। चलते-चलते कभी-कभी उनका शरीर मेरे शरीर से छू जाता था। ऐसे मौको पर वे मन्द मुस्कराहट के साथ तिरछी नजर से मुझे देख लेते थे। मैं संकोच से सिकुड़ कर अलग हट जाती। किन्तु वे हौले-हौले फिर सटकर चलने लगते। रास्ते के कीचड़-पानी को बचाकर चलने में इतना व्यस्त रहना पड़ा कि खुल कर विशेष बाते करने का अवसर ही न मिला। तो भी बीच-बीच मे उन्होंने जो कुछ शब्द या वाक्य कहे, वे मेरी प्रशसा से भरे हुए थे। यह पहला ही अवसर था इस मोहल्ले मे आने पर गजाधर बाबू के संपर्क मे आने का। और ऐसा जान पड़ता था कि वे मुझे अपने बहुत नजदीक लाना चाहते हैं। खुलकर हिल-मिल जाने की चेष्टा में हैं। कई कीचड़ भरी गंदी नालियों-गलियों को पार कर हम

एक कच्चे मकान के सामने जा पहुँचे। मकान के बरामदे में दो पुरुष एक छोटी लालटेन सामने रक्खे बैठे हुए थे। हमारे साथ पीछे-पीछे एक मनुष्य था। मकान के पास पहुँचते ही उसने आगे बढ़कर, बरामदे मे जाकर कहा-'दाई जी तो आगईं'। बरामदेवाले उछल कर खड़े हो गये। लालटेन उठाकर उन्होंने हमारा स्वागत किया। मेरे पहुँचते ही एक ओर का एक द्वार खुला और एक बूढ़ी स्त्री मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। यह इस मोहल्ले की नाउन थी। ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति हो जो इसे न जानता हो। इसकी पुत्र-वधू के पहले-पहल बाल-बच्चा होने वाला था। पर मेरे ख्याल से उसमें अभी काफी देर थी।

नाउन मुझे अन्दर ले गई। एक ओर एक छोटी चारपाई पर एक युवती पड़ी कराह रही थी। धुएँ से भरी, काली लालटेन की धुधली रोशनी में मैने उसकी जाँच की। पर तुरन्त बच्चा होने का कोई लक्षण न देख पड़ा। पूछने पर पता चला कि रात एक बजे से एकाएक असह्य पीडा होने लगी थी, इसी कारण दाई की तलबी हुई है। मैंने सेक और उपचार की समुचित व्यवस्था करदी। बाहर आने पर देखा, गजाधर बाबू बरामदे के बगल वाली कोठरी मे एक चारपाइ पर मजे से बैठे हैं। मुझे बाहर आते देख, वे लपक कर तपाक से मेरे सामने आकर खड़े हो गये और मन्द मुस्कराहट के साथ बोले—'आपको कष्ट तो बहुत दिया गया, मगर जच्चा की जान का खतरा था, इस कारण ऐसे समय में भी विवश होकर आपको लाना ही पडा। कैसी है जच्चा की तबियत ?' मुझे बडी झुँझलाहट मालूम हो रही थी, पर मैंने शान्ति पूर्वक उत्तर दिया—'ठीक है। वैसी कोई चिन्ता की बात तो है नहीं। अभी बच्चे के जन्म के लिए काफी दिन शेष हैं। शायद असावधानी के कारण दर्द उठ आया होगा। मैंने उचित व्यवस्था कर दो है।'

गजाधर बाबू ने चाँदी के चमचमाते हुए दो रुपये मेरी ओर बढ़ाते हुए मधुर स्वर मे कहा—'धन्यवाद ! यह है आपकी तुच्छ भेंट। बड़ा कष्ट किया आपने।'

मैं रुपये नहीं लेना चाहती थी, पर उन्होंने जबरदस्ती मेरा हाथ थाम्ह कर उसमे बरबस रुपये रख ही तो दिये। फिर मेरी कलाई पकड़ कर कोठरी में लेजाते हुए बोले—'इस कड़ाके की ठंढ में आप ठिठुर गई होगी। आपके बदन मे गरमी लाने के लिए गरमा-गरम चाय का भी प्रबन्ध किया गया है।'

इच्छा न रहने पर भी मुझे एक प्याला चाय का लेना पड़ा।

उसी दिन से गजाधर बाबू के साथ मेरा मेलजोल बढ़ गया। उनकी स्त्री प्रायःदूसरे-तीसरे मुझे जरूर बुलवा लेतीं और घंटों मुझसे बातें करती। वे न तो बहुत खूबसूरत ही थी और न बदसूरत ही। उनकी उम्र यही कोई २५ की रही होगी। बालबच्चा नहीं हुआ था। प्रसन्न देख पड़ने पर भी एक अजीब चिन्ता-रेखा उनके मुख पर झलकती रहती। जैसे कोइ भारी बोझ उनके हृदय पर रक्खा हो।

गजाधर बाबू भी प्रायः मुझे अपने घर पर मिलते और खूब घुल-घुल कर मुझसे बातें करने की वे चेष्टा करते। मैं उन्हे नाखुश तो न करना चाहती थी, किन्तु उनसे विशेष घनिष्टता भी न करना चाहती थी। मोहल्ले मे उनका बड़ा रोबदाब था. थानेदार और डाक्टर से उनकी दाँत काटे की रोटी थी और नगर के बड़े आदमियों से मेल-जोल। मेरे पहले जो दाई इस मोहल्ले मे नियुक्त थी, उसकी गजाधर बाबू से न पटने पर बड़ी बदनामी उड़ चुकी थी। बड़ी फजीहत हुई थी और अन्त मे उसकी नौकरी पर आ बनी थी। भला मैं कैसे उन्हें नाराज कर सकती थी।

मेरे चार लड़के थे और चारो पढ़ रहे थे। बडा १६ बरस का था और मेट्रिक मे पढ़ता था,सबसे छोटा १० का था और छठें

दरजे मे था। उनकी पढ़ाई का सारा खर्च मुझी को जुटाना पड़ता था। अपनी गुजर भी जरा ठिकाने से चलानी थी। ऐसी दशा मे गजाधर बाबू ऐसे व्यक्ति को खुश रखना ही मेरे लिए उचित था।

दिन बीतते गये। और मेरे साथ गजाधर बाबू राह-रस्म बढ़ाते ही गये। धीरे धीरे उन्होने मुझे अपनी मित्रमंडली से भी परिचित कराया। और असल में इसी मंडली की प्रेरणा से उस रात उन्होंने नाई की स्त्री के उपकारक के रूप मे मुझसे सपर्क स्थापित करने का आयोजन किया था।

गजाधर बाबू की इस मंडली मे वैसे तो थे पूरे आठ सरदार, किन्तु डाक्टर और थानेदार, ये दो सदस्य प्रायः गुप्त रूप से ही गोष्ठी मे सम्मिलित होते, और खास कर तभी जब कोई नया शिकार फँसता। वैसे प्रायः नित्य ही बैठक जमती, लालपरी बोतल से निकल कर नाच-रंग दिखलाती, फ्लेश के दॉव लगते, और न जाने क्या-क्या होता।

अन्य सदस्य थे, गज्जू गिरधर, गोम्मू, गंगू, गिलक्राइस्ट। गज्जू थे मुसलमान नवाब के लडके, बिगड़े अमीर और आवारा तबियत के मनुष्य। गिलक्राइस्ट थे तो ईसाई, पर रहन-सहन हिन्दुओ की-सी रखते थे। गिरधर, गोम्मू और गगू बाबू सभी दफ्तरो में काम करते थे, बँधी आमदनी और नपे-तुले वक्त के नौकर। इन लोगो ने अपने राग-रंग के लिए इस चडाल चौकड़ी का संगठन कर रक्खा था और नये-नये शिकारो को फँसा कर साझे मे विलासपूर्ण जीवन विताते। सभी के विवाह हो चुके थे, एक-एक, दो-दो बच्चे भी हो चुके थे। पर नये माला को चखने की लत ऐसी लग गई थी कि बैठे-ठाले विला जरूरत जाल फेंकते और नई-नई युवतियो को फसा-फँसा कर साझे मे ..।

एक दिन सध्या के कुछ पहले ही गजाधर बाबू की नौकरानी

की नवेली-छोकरी दौड़ती-दौड़ती आई और हाँफती-हाँफती बोली—'जल्दी चलिए, बहू ने आपको बुलाया है।'

उसकी हालत देखकर तनिक मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उससे पूछा—'कुशल तो है? बहू की तबियत तो अच्छी है? मामला क्या है?'

वह चंचल छोकरी आँखें नचाकर, हाथ की अँगुलियों को मटका कर बोली—'जल्दी चलिये, वहीं सब मालूम हो जायगा। देर न कीजिये।'

मैंने बहुत पूछा, पर उसने ज्यादा कुछ भी न बतलाया। मैं हड़-बड़ा कर तेजी से पैर बढ़ाती हुई गजाधर बाबू के मकान में जा पहुँची। मकान एक लम्बी-पतली गल्ली में था। इसकी बनावट भी काफी अजीब थी। पहले बरामदा और उसके अगल-बगल बैठक के दो कमरे थे। फिर जनानखाने का सिलसिला था। जनानखाने वाला हिस्सा इतना दूर था कि जोर से चिल्लाने पर भी कठिनाई से सामने बैठक वाले आदमी को अन्दर की आवाज सुनाई पड़े। पिछवाड़े और बगल की दीवालें इतनी ऊँची और मोटी थीं कि उनको पार कर साधारण शब्द तो बाहर कठिनाई से जा सकता था। जनानखाना क्या था, एक पक्की गढ़ी ही थी।

बैठक खाली पड़ी थी। सामने वाले बरामदे में वही नाई था, जिसकी स्त्री के लिए उस रात में मेरी तलबी हुई थी। यह नाई गजाधर बाबू की गोष्ठी का गुप्तचर और युवतियों को लाने-फँसाने के लिये एजेंट का काम करता था। उसे अकेले इस समय यहाँ देख, मेरा माथा ठनका।

छोकरी मुझे लिये हुए सीधे जनानखाने में जा पहुँची। मेरे अन्दर धँसते ही उसने धीरे से किवाड़ बन्द कर दिये। मैं और भी ज्यादा सशंकित हो उठी।

अन्दर जो दृश्य देखा, उसमें मेरे तो देवता ही कूच कर गये। जनानखाने के एक सजे-सजाये कमरे में गजाधर बाबू अपने पाँच दोस्तों के साथ बैठे लालपरी की आराधना कर रहे थे।

मेरे पहुंचते ही वे लपक कर मेरे पास आये और हँस कर बोले—'बड़े मौके से आई। पर देर भी काफी लगाई। हम लोग बेताब हो रहे थे, बड़ी बेचैनी से तुम्हारी राह आँखें बिछाये हुए देख रहे थे।'

मैंने आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखते हुए तनिक रुंधे हुए गले से हकलाते हकलाते कहा—'खैरियत तो है? बहूजी की तबियत कैसी है?'

वे ठठाकर हँस पड़े। इसी समय उनके अन्य मित्रों ने मुझे सहसा चारों तरफ से घेर लिया और गज्जू ने कहा—"अब सब की तबियत ठीक हो जायेगी। आपकी हवा से ही सब निहाल हो उठते हैं।"

मैं घबरा कर इधर-उधर देख रही थी। देखा, चारों ओर से किवाड़ बन्द हैं, उस चुलबुली छोकरी का भी कहीं पता न था। मेरी घबराहट बढ़ गई। मैं समझ गई कि मेरे साथ चाल चली गई है। मैं जो अब तक इस चांडाल-चौकड़ी के काबू में राजी से नहीं आई थी, इसीलिए अब इन दुष्टों ने मुझे इस प्रकार विवश किया है।

इसी समय वे सब मुझे उठा कर कमरे में ले गये। वहाँ गाव तकियों के सहारे मुझे लिटा दिया गया। मैंने बहुत हाथ-पैर चलाये, जोर लगाया, पर मेरी एक न चली। गजाधर बाबू ने मुझे अनेक प्रकार से समझा कर शान्त रहने और खुशी से मौज उड़ाने का उपदेश दिया। मैंने भर्राई हुई आवाज में उनसे कहा—'आप के घर में तो मुझसे कमसिन, ज्यादा खूबसूरत, प्रेम की मूरत स्त्री मौजूद है। आप क्यों मुझ अधेड़ को इस प्रकार बेइज्जत करने पर

तुले हुए हैं। मैं तो चार-चार युवकों की माता हो चुकी हूँ। उम्र भी मेरी तीस को पार कर गई है।'

गजाधर बाबू ने मुस्करा कर कहा—'खूब कहा। अरे! अभी तो तुम १८-२० से ज्यादा की मालूम नहीं होतीं। और सच तो यह है कि जो नमक, जो रौनक तुम्हारे चेहरे पर है, वह मुझे कहीं दूसरी स्त्री में खोजने पर भी नसीब न हो सकी।'

मैंने बहुत हाथ-पैर जोड़े, बड़ी-बड़ी प्रार्थनाएँ-विन्तियाँ कीं, शपथें दिलाईं, भय दिखलाया, बकझक किया, पर सब बेकार गया।

जब मेरी नींद खुली तो देखा, मैं गजाधर बाबू के उसी कमरे में पड़ी हूँ। रात के तीन बज चुके हैं। मेरे साथ जोर-जबरदस्ती करने वालो में से पाँच व्यक्ति तो चले गये हैं। केवल गजाधर बाबू एक ओर बैठे हैं, कमरे के बाहर वही मुझे धोखा देकर लाने वाली छोकरी पड़ी खर्राटे ले रही है।

मुझे इन लोगों ने ब्रांडी और शायद उसमें मिलाकर कोई ऐसी दवा देदी थी, जिससे मैं बेहोश-सी हो गई थी। उसी दशा में इन छहों सफेद-पोश डाकुओं ने मेरे शरीर पर पारी-पारी से डाके डाले। इस समय मेरे दर्द हो रहा था, तबियत बेचैन थी। मैंने सोचा, जब मेरी उम्र की स्त्री का यह हाल है, तब किसी नई लड़की का क्या हाल होता होगा? इस विचार मात्र से मैं काँप उठी।

—:०❀०:—

घूंघटवाले पंडितजी

विवाह तो हो गया। और तेरह बरस की सुकुमारी रतना ससुराल भी आगई। सुहागरात मौज से मनाई गई। इष्ट-मित्रों ने खुशी से मस्त लक्ष्मीमल को इस दूसरे विवाह के लिए खूब ही बधाइयाँ दीं। और खुशी तथा बधाइयों की बात ही थी। पहिली पत्नी के मरने के बाद ही ३५-४० बरस के लक्ष्मीमल का विवाह बस सात मास के भीतर ही हो गया। दुलहन भी मिली खासी सुन्दरी, सुबुक, सुशीला।

रतना गुड़ियों से खेलना छोड़कर अधेड़ पति को खिलाने, खुश करने के लिए मजबूर हुई। पर यह सुख भी उसके भाग्य में महीने भर के लिए ही था। लक्ष्मीमल थे कारबारी आदमी उनके बाप कलकत्ते को मँझाने के बाद माल फसते न देख सीधे रंगून जा पहुँचे थे। और बरमा पहुँचते ही ब्रह्मा ने कुछ रुख बदला। रंगून में उनके भाग्य की रंगत पलटी। कलकत्ते में गठरी कंधों पर लादे-लादे दिन भर फेरी करते रहने पर भी, पेट भर मोटा अनाज नसीब न होता। पर रंगून में एक स्थान पर दूकान में बैठे-बैठे ही रंग जमा और माल कटने लगा। कुछ ही दिन में स्थिति कुछ-की-कुछ हो गई। समय बीता। सेठजी चलती दूकान और काफी चल-अचल संपत्ति छोड़ कर स्वर्ग सिधारे। उनके एक मात्र सयाने पुत्र लक्ष्मीमल ने दूकान को चालू रखने की ठानी। लक्ष्मीमल की एक विमाता थी। वे सदा देश में ही रहीं। पहले भी सेठजी की देश वाली नव-उपार्जित सम्पत्ति की सहेज-सरेख उनके जिम्मे थी। अब तो उन्हें पूरी तरह से सँभालना पड़ा।

पैसे वाले के बेटे का विवाह जल्दी न हो, यह असंभव बात

है। नये पैसे वाले सेठ के बेटे लक्ष्मीमल का विवाह देखते-देखते जवानी के उतार के पास बड़ी धूम-धाम से हुआ। पर उसके पहले सेठ जी ने खुद अपना दूसरा विवाह किया था। और दोनों सेठानियाँ रहीं अपने देश मे ही। समय बीता। सेठजी अपनी अधेड़ पत्नी को बिलखती छोड़ चल बसे। और कुछ समय बाद लक्ष्मीमल को रंगून के काम मे फँसे रहने पर भी सदा देश में रहनेवाली अपनी स्त्री के मरने के समाचार से विचलित होना पड़ा।

वंश की रक्षा के लिये दूसरा विवाह जरूरी था। लक्ष्मीमल कुछ अपने मन से कुछ लोगो के समझाने से देश आये और धर्म के ख्याल से पुरखो को पिण्ड-पानी-देनेवाले वंशज के निमित्त दूसरा विवाह करने के लिए राजी हुए। शादी तय करने वालों की बन आई और रतना की गरीब माता को भरपूर रकम का लालच देकर लक्ष्मीमल का विवाह करा दिया गया। दलालों को दोनों ओर से गहरी रकमें मिलीं।

विवाह के बाद महीने भर के भीतर ही लक्ष्मीमल अपने कारबार की डोरी मे बधे रंगून चले गये। बेचारी नन्हीं रतना नये अनुभवों को लिए विसूरती अपनी प्रबन्ध-पटु सास के पास रह गई। लक्ष्मीमल ने नव-विवाहिता भार्या को परदेश ले जाना उचित न समझा। भला स्त्रियो का विदेश मे कैसे जाना हो!

व्यापार-व्यवसाय का चक्कर बुरा होता है। उसमें फँसने पर दुनिया के और सभी फेर भूल जाते हैं। पूरे चार बरस बीत गये, पर लक्ष्मीमल लौट न सके।

इधर रतना अपनी सरस सास की छत्र छाया में तेजी से बढ़-बदल रही थी। विवाह के पहले उसे सूखी रोटी और नमक से पेट को शान्त करना पड़ता। उसमें भी ज्यादातर पानी का

हिस्सा प्यास से कई गुना अधिक पेट में पहुँचता, अन्न तो नाम मात्र को ही। उसके गाँव के खेत लहलहाया करते। पर उस शस्य-सागर के बीच मे भी उसके लिये निरा मरुस्थल ही रहा। जब से होश सँभाला, तब से उसके लिए बराबर अन्न-काल-सा ही बना रहा। पर विवाह के बाद सारी बातें एकदम बदल गई। अब रतना का छत्तीस-व्यंजन और छप्पन प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों को जीभर कर छकते रहने की पूरी सुविधा थी। उसकी सास खुद खाने-खिलाने की शौकीन थी। और फिर रंगून की बेहद कमाई का आखिर सद्-उपयोग भी तो होते रहना जरूरी था। माल की खिलाई ने रतना के भूख से झुलसे अंगो मे चमक और चिकनाहट ला दी। शरीर भर उठा। रंग निखरने लगा। और छः महीने बीतने के पहले ही रतना शीशे मे अपना मुस्कराता हुआ सुन्दर चेहरा देखकर खुद ही मुग्ध सी हो उठती।

रतना को सास को अपना सारा जीवन पति से दूर रहकर बितना पड़ा था। जब सेठजी जीवित थे, उस समय भी रंगून के कारबार से किसी तरह छुट्टी लेकर वे दो-चार साल मे आते और महीने-दो महीने देश मे रहकर अपनी चल-अचल सम्पत्ति की सहेज-सरेख करने के साथ ही अपनी धर्मपत्नी की देख-भाल कर जाते। और फिर दो-चार साल के लिए चतुर सेठानीजी को देश में रहते हुए अपनी सँभाल-सुविधा का प्रबन्ध खुद अपने आप करना पड़ता, अपना हिसाब-किताब खुद अपनी समझ-सुरुचि से चलाते रहना पड़ता। ऐसी स्थिति मे अपने सुख सुभीते के अनुसार उन्होंने अपने संसार की रचना खुद की थी; अपने झीने-झीने, कोमल-लचीले भावना-तंतुओ से अपना ताना-बाना तैयार किया था। चूँकि समाज मे शान से रहना था, इस कारण बड़ी होशियारी से सारी तैयारियाँ की गई थीं। जीवनभर के अभ्यास के कारण सेठानीजी इन सब कलाओं में काफी कुशल

हो गई थीं। सारा कारबार चलता रहा, पर समाज को वैसे कुछ कहने-सुनने का हौसला न पड़ा। मिट्टी के चूल्हे की बातें समाज से छिपी हों, सो बात तो न थी, पर ऐसी कोई बात न उभड़ने-उठने दी गई कि लपटें भीषण रूप धारण कर सकें और किसी को व्यर्थ मे झुलसना-जलना-तिलमिलाना पड़े। सेठानी समाज मे सलीके से चलने मे खूब ही चतुर थीं। सब की छाती पर मूंग दलते रहने पर भी समाज का अन्धा, गूँगा, जड़ बनाये रखने मे चाणक्य की नानी।

उनकी उम्र ढल चली थी। पर खिलाई-पिलाई और चिन्ता रहित सुखी जीवन ने उसके शरीर को काफी सँभाल रक्खा था। और स्वस्थ शरीर की सभी जरूरतों को पूरा करते रहने के साधन उन्होने अच्छी तरह से जुटा-जमा रक्खे थे। गरीब की नन्हीं लड़की रतना को उन्होने ऐसा वशीभूत किया कि सब कुछ देख, सुन, समझकर भी वह मुँह खोलने या भौंह टेढ़ी करने की जुरत न कर सकती। सेठानी ने उसे प्रेम की डोर से जकड़ दिया था, उपकारों से लाद रक्खा था, सुख-सुविधाओ से मुँह बन्द कर दिया था। वैसे भी सेठानीजी लोगों को खुशकर उन्हे मिला-फुसलाकर अपने वशमे करनेकी कोमल-कलामें पटु थीं, फिर रतना तो थी एक गरीब की लड़की। उसकी जरूरतों को पूरा करते हुए अच्छी तरह से रख, स्नेह की पुट दे अपने हाथ की कठपुतली बना लेने में उन्हें कितनी देर लगती। रतना उनके इशारों पर मुस्कुराती हुई थिरकने लगी।

उम्र के तकाजे ने भरपूर खिलाई-पिलाई की शह पाकर और भी तेजी से जोर पकड़ा। महीनो के साथ ही रतना की इच्छाओं-उमंगों की संख्या बढ़ती गई। और संसार की सभी बातों का भरपूर अनुभव रखने वाली सेठानी की तेज आँखों ने पहले ही सारी स्थिति भाँप ली। उन्होंने नई, नवेली बहू को पास-पड़ोस के

जाने-समझे देवरों-रिश्तेदारों से मौके-मौके पर सहूलियत-सलीके के साथ बड़े घरों के सुबुक तरीको पर हँस-बोलकर मन बहला लेने की सीमित स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। सेठानी इन बातों की जरूरतों को खूब समझती थीं। और इस सीमित किन्तु आवश्यक सुखद स्वतंत्रता को पाकर नई बहू रतना अपनी उदार-समझदार सरस सास के ऋण के पाश में बंध गई। दोनों एक-दूसरे के निकट भी जल्दी ही आ गईं। उन्होंने एक-दूसरे को समझने और सुखी रखने की चेष्टाएँ शुरू कर दीं।

+ + +

समय बीतता गया। रतना का शरीर विकसित होता गया। मन की उमंग भी फैलती गईं। आकांक्षाएँ रंगीनी पकड़ती गईं। तीन साल बीते। और अनुभवी सास ने देखा कि अब यौवन के भार से बेहद लदी हुई अभी तक सीमित स्वतंत्रता से संतुष्ट बहू के सुभीते के लिए तत्काल किसी और खास प्रबन्ध की नितांत आवश्यकता है। मामले को बेढब होने के पहले ही सँभाल लेने में ही तो बुद्धिमानी है। प्यास लगने पर यदि समय से पानी न दिया गया तो प्याँस के खराजाने का भय रहता है। प्यास के एक बार खराजाने के बाद बार-बार ज्यादा-ज्यादा पानी ढकोसते रहने पर भी शान्ति नहीं होती। नई उठानवाली रतना को लुक-छिपकर किसी तरह रस-विरस की जो कदाकचित बूँदें-फुहारें नसीब हो जातीं, उनसे उसकी प्यास बुझने के बजाय बराबर बढ़ती ही जा रही थी। चतुर, अनुभवी सास ने समय रहते उचित उपाय करना अधिक अच्छा समझा।

मन्दिरों-देवस्थानों पर वैसे भी परदे का जोर नहीं रहता। फिर यदि घर का कोई खास मर्द साथ न हुआ तो कहीं भी परदे की उतनी कड़ाई जरूरी नहीं समझी जाती। रंगून की कमाई पर

गुलछर्रे उड़ाते वक्त स्नान, पूजा, दान, दक्षिणा कथा, उत्सव आदि की बातें खूब सूझती हैं। और असल मे ऐसी-ऐसी बातें ऐसे-ऐसो से सध-निभ भी खूब ही सकती हैं।

सेठानीजी अपनी बहू रतना के साथ स्नान-पूजा के लिए पवित्र घाटो और प्रसिद्ध देवालयो में जाती, दान धर्म करतीं; कथा-वार्ता सुनतीं, व्रत-उत्सव करतीं, कीर्तन-भजन में शामिल होतीं, पाधाओं-पुरोहितों, पण्डों-पुजारियों, पंडितो-कथावाचको, जापकों-भाजनीकों, ब्राह्मणों-ब्रह्मचारियो, साधुओं-सन्यासियो को निहाल-संतुष्ट करती।

बदले मे उनके मौखिक आशीर्वादों-शुभकामनाओं के साथ ही उनकी सक्रिय सेवाओं-सहायताओं के कारण सेठानीजी के बहुत से अभाव दूर होते रहते, अनेक अनिष्ट टलते रहते, विभिन्न इच्छाओं-कामनाओं की पूर्ति होती रहती और धार्मिक-जगत में तथा सुखी-समृद्धिशाली समाज मे वाहवाही होती, वह ऊपर से। समाज है बड़ा सुविधावादी। उसमें सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन तैयार कर दिये गये हैं। हाँ, उन साधनो का उपयोग तनिक सहूलियत और चतुराई से करना जरूरी है। साँप तो मर जाये, पर लाठी न टूटे। इसी मे तो बुद्धिमानी है।

सीमित, समीप-व्यापिनी, सुविधाजनक स्वतंत्रता से उमंगों-आवश्यकताओं की क्षण-क्षण तीव्र होनेवाली बाढ़ में बेहिसाब बढ़ने-बहने वाली बहू के फड़कते-चिलकते-बढ़ते-ललकते मुँहजोर अंगों का ख्याल आखिर अनुभवी, समझदार सरस सास को करना ही पड़ा। और समय रहते चेतने की नीति से काम लेने-वाली सेठानी ने कथा सुनने में वृद्धि की।

× × ×

धर्म की महिमा अपार है। उसकी शरण में जाने पर स्त्री-पुरुष के दोनों लोक बन जाते हैं। इस लोक मे मनचाहे सुख, यश, लाभ,

भोग की प्राप्ति अनायास ही होती रहती है और परलोक में इन्द्रासन का कोई-न-कोई कोना सुरक्षित हो जाता है। स्वर्ग मे विशेष रूप से मणि-मन्दिर तैयार होते रहते हैं, देवों और देवांगनाओं का दिव्य सहवास सुलभ हो जाता है। अनुभवी चतुर सास ने भी रतना के हित के लिए धर्म की ही सर्वदायिनी शरण ली। धर्मानुष्ठानो और कथा-कीर्तनों के लिए कुशल पंडितो का सहयोग प्राप्त किया गया। अनेको पंडितो ने योग दिया। और रतना की आँखों के सहारे उसकी पारखी सास ने अन्त में एक पण्डित को कथा-वार्ता के लिए स्थायीरूप से चुन लिया। वैसे तो समय-समय पर नये-नये अनुष्ठान चलते और पूरे होते, पर प्रतिदिन के धर्मानुष्ठान, कथा-कीर्तन के लिए उसी खास पंडित की स्थायी नियुक्ति कर दी गई। प्रतिदिन रात के आठ-नौ बजे कथा प्रारम्भ होती और रात के ग्यारह-बारह बजे तक चलती। और भोजन तो पण्डितजी रतना के यहाँ करते ही। हाँ.. कभी-कभी देर-अबेर हो जाने के कारण वे विवश हो रात भर विश्राम-शयन भी वहीं-कहीं किसी कोठरी मे कर लिया करते। अनुभवी सरस सास को यह देख जान-समझकर अत्यधिक सुख-संतोष हुआ कि पति के हजारो मील दूर रंगून मे रहने पर भी यौवन-भार से बेहद लदी-दबी रतना के दिन पूजा-अर्चा, भक्ति-भावना, कथा वार्ता, हरिकीर्तन-साधु-सत्संग मे मजे मे कटते जा रहे है।

× × ×

इधर कुछ दिनो से पास-पड़ोसवालो ने व्यर्थ ही फूसी शुरू कर दी। शायद ससारवाले किसी के शान्त धर्माचरण को चुपचाप सहन नहीं कर स कुछ मुँह-बोले और माने-लगाये नाते-रिश्ते के देवरो ने रतना के संबन्ध मे तीव्र एवं व्य शुरू कर दी थी। शायद उन्होने जिस-जि

जितनी रतना से पाने-मिलने की कल्पना-आशा कर रक्खी थी, उसमे से उन्हे बहुत ही कम अंश प्राप्त हो सका था। अनेकों को शायद विमुख-निराश भी लौटना पड़ा। कई को अतृप्त दशा में बरबस हटना पड़ा। कथा-कीर्तन की धार में ज्यादातर उनके पैर न जम सके। पण्डितो के आवागमन संभाषण-सत्संग के आगे उन सबका रंग फीका पड़ गया। और अन्त मे अपनी अनुभवी रसभाव-विभोर सास के सुपरामर्श के अनुसार शायद रतना ने अपनी वासना-कामना का कथा-कीर्तन के सुरक्षित सर्वमान्य भुक्ति-मुक्ति देने वाले रास्ते के बीच से निखार-मॉज कर निहाल करते रहने मे ही सुगति-सुमति समझी। और इसी कारण धार्मिक पण्डितो की सुखद-शरण मे उसे बाधारहित विशेष सुख शान्ति की झलक देख पड़ी।

रस-लोलुप किन्तु कथा-कीर्तन के प्रभाव-प्रसार के कारण निराश, विदग्ध देवरो की दिन-दिन बढ़ने-तेज पड़ने वाली आलोचना-चर्चा का पता रतना को न हो, सो बात न थी। पर उसने उसकी वैसी परवाह न की। हॉ, उसने एक काम जरूर किया, अपने चुने हुए कथावाचक को वह तनिक सावधानी से रखने लगी। कथा-कीर्तन की रसमयी धारा उसी तेजी से बहती, किन्तु तनिक अधिक सतर्कता-सावधानी से ही।

\+ + +

समय मजे मे बीत रहा था। धीरे-धीरे दाई, डाकृरिन, नर्स आदि को भी रतना की कथा, उसके भजन-कीर्तन मे रस मिलने लगा और वे भी श्रद्धालु भक्त की भाँति समय-समय पर आने-जाने लगीं।

पास पड़ौसवालों की तीखी तलाशवाली तेज नजर इन नई साथिनो-भक्तिनो पर पड़ी और चर्चा आलोचना मे कुछ वृद्धि

कुछ परिवर्तन भी हुआ। पर तो भी वैसा विशेष अन्तर न पड़ा। रतना का काम मजे मे चलता ही रहा।

और एक दिन रात के प्रायः दो बजे रतना और उसकी सरस अनुभवी सास को अपने सदर द्वार पर होने वाले जोर के आघातों ने सहसा चौंका दिया। और उनके कर्कश-तीक्ष्ण प्रश्न के उत्तर में जो मधुर-अप्रत्याशित-परिचित स्वर सुन पड़ा, उसने तो दोनो के कानों एवं हृदयो पर वज्र-सा कठोर आघात किया।

लक्ष्मीमल के इस प्रकार एकाएक आजाने से दोनों एकदम घबरा उठीं। उनके होश उड़ गये। किन्तु उनके सँभलने के पहले ही नौकरानी ने मालिक की सुविधा का ख्याल कर (मालकिनों की रुचि, रक्षा और सुविधा को रचमात्र परवाह न कर) दौड़कर द्वार खोल दिया। लक्ष्मीमल धड़धड़ाते हुए अन्दर आ पहुँचे।

अनुभवी सास ने क्षणभर मे ही अपने को सँभाल लिया। वह ताड़ गई कि बिना सूचना दिये लक्ष्मीमल का इस प्रकार एकाएक आजाना और दो बजे रात मे द्वार खुलवाना रहस्य से खाली नहीं है। उस रात कथा-कीर्तन मे देर हो जाने के कारण पंडितजी उसी घर मे रहने के लिए मजबूर हो गये थे और भाव-विभोर होने के सबब से ही वे रतना के शयनागार से अन्यत्र न जा सके थे। लक्ष्मीमल ऐसा कारबारी आदमी शायद शुद्ध भावना को न समझकर कुछ-का कुछ समझ बैठे, यह ठीक न होगा, इसी से उन्होंने जल्दी-जल्दी रतना को कुछ खास बातें समझा दीं और वे झपटकर सुपुत्र लक्ष्मीमल का स्वागत करने और कुशल-मंगल जानने-सुनने के विचार से आगे बढ़ आईं। पर उन्हें यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ कि रात के दो बजे का घनघोर समय होने पर भी लक्ष्मीमल के साथ पास-पड़ौस के अनेक आदमी आये हैं और सतर्क दृष्टि से इधर-उधर आँखे फेंक रहे हैं। दूसरे ही क्षण दुनिया देखी-सुनी अनुभवी सेठानी की समझ

में सारी बातें आगईं। पास-पड़ौस वाले हितू शुभचिंतक बड़ी सावधानी से घर भर के द्वारा-खिड़कियों आदि पर स्वयसेवकों रूप से कोई शुभ भावना लिए पहरा-सा देते मँडरा-टहल रहे हैं। वे ताड़ गई कि कथा वाले पंडित के लिए ही यह सब मोर्चे-बन्दी की गई है। वे भी इस चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए कमर कस कर तैयार हो गईं। लक्ष्मीमल का स्वागत-सत्कार करते-करते उन्होंने कौशल से उसे रतना के शयनागार मे जाने से कुछ क्षण तक रोक रक्खा। फिर बिजली की तरह तड़प कर वे रतना के पास जा पहुँची और क्षण भर मे कुछ समझा कर वैसे ही उड़ कर लक्ष्मीमल के पास जा पहुँची और जोर-जोर से उसके उस समय के सुभीते के लिए नौकरो-नौकरानियों को आदेश देने लगी।

उधर रतना ने अपने पंडित को बाहर निकालने के लिए लंबे लहँगे और चौड़ी ओढ़नी मे ऐसा लैस कर दिया कि पास से घूँघट उठाकर देखे बिना कोई भी उसे सहसा पहचान न सकता। पर जब वह उसे ठेल-ठाल कर बाहर की ओर ले जाने लगी, तभी उसको विश्वस्त नौकरानी ने आकर सूचना दी कि कोई भी खिड़की-दरवाजा ऐसा नहीं है जहाँ से घूँघट डालकर भी रसीले पंडितजी अछूने-अनजाने बचकर निकल जा सकें। रतना के सर पर गाज गिरी। पंडित तो भय के मारे काँपने लगा। इसी समय अनुभवी सेठानी ने आँधी की तरह कमरे मे घुसकर कुछ खास हुक्म दिया। रतना को जान-में-जान आई। पर पंडित के प्राण और भी सूख गये। किन्तु कोई और उपाय न देख पड़ता था। अन्त मे हार कर पंडित को उसी घूँघटवाली दशा मे कमर से मोटी रस्सी बंधवा कर दो मंजिले की खिड़की से पिछवाड़े की ओर कूदना पड़ा। रतना और उसकी नौकरानी ने रस्सी को बाँध कर थाम्ह लिया। बड़ी सतर्कता से घूँघटवाले पंडित किसी तरह

कॉल-कूदकर खिड़की पर जा पहुंचे, और संसार भर का साहस बटोर कर नीचे झांकने लगे, पर उनकी हिम्मत नीचे उतरने को न पड़ी। इसी समय रतना को बाहर से कुछ लोगों के आने की आहट सुन पड़ी। उसने पंडित को सहसा जोर का एक धक्का दिया। उसे इसकी कल्पना तक न थी। अचानक जोर का धक्का उसके काँपते अंग तनिक भी न सँभाल सके। वह मुँह के बल नीचे की ओर दनदनाता तेजी से जाने लगा। रतना और नौकरानी के हाथों ने और खूँटी की गाँठ ने पंडित को अधर में ही सँभाल लिया। रस्सी छोटी थी। वह जमीन तक न पहुंच सकती थी। इसी से पंडित औंधे-मुँह जमीन की ओर लटकने लगे। रतना ने ऊपर से झाँका। देखा, पंडित अधर में ही लटके झूला झूल रहे हैं। इसी समय कमरे के बाहर द्वार के पास ही पैरों की चाप सुन पड़ी। रतना ने हड़बड़ा कर खूँटी से रस्सी को खोल दिया और आव-देखा-न-ताव, फौरन रस्सी को खिड़की से बाहर फेंक दिया। पंडित धड़ाम से मुँह के बल जमीन पर जा गिरे। उनके सर में काफी चोट आई। एक पैर मोच गया। कमर भी टूक गई। उनके मुँह से अचानक एक चीख निकल पड़ी। अकारण-शुभ-साधना-व्रतवाले पड़ोसी, "कौन है? कौन है?? क्या हुआ? क्या हुआ??" चिल्लाते दौड़ पड़े। पंडित को अपनी चोटें भूल गईं। उन्हें जैसे भी हो वहाँ से भागने में ही अपनी जान की खैर जान पड़ी। किसी तरह कमर से रस्सी को छुड़ाकर वे गिरते-पड़ते-लँगड़ाते-उचकते भाग खड़े हुए। पर सनक नौजवानों के हाथों से भला वे कैसे निकल कर बाल-बाल बच सकते थे। अन्त में कुछ दूर उचक कूदकर जाते-जाते उन पर अनेक बलिष्ठ हाथ जा पड़े। पहले तो लोगों ने समझा कि कोई स्त्री है, पर जब घूँघट उठाकर देखा गया तब तो सारा रहस्य खुल गया। पंडितजी धर पकड़ कर रतना के मकान

में लाये गये और जो अभ्यर्थना उस समय होनी उचित थी उससे पंडितजी भला कैसे वंचित रह सकते।

और उसी दिन से उनका नाम 'घूँघटवाले पंडितजी' पड़ गया।

गले यौवन की आकर्षक लपटें

नजर खिड़की पर गई, और आँखे चौंधिया उठीं। ओठ काफी फैल गये। गर्दन कुछ और लम्बी हो कर आगे को बढ़-झुक गई। भारी भरकम चेहरा तनिक तिरछा हो ऊपर को उठ गया। सर एक खास अन्दाज के साथ सामने उचक कर पीछे की तरफ झुक गया। भूकम्प-सा यह सब परिवर्तन एक क्षण मे हो गया और साथ ही पण्डित जी के गम्भीर कंठ से धीरे से भावपूर्ण स्वर में निकल गया –"ओह! इतना सौंदर्य! बला की रौनक! इस नरक से स्थान मे स्वर्ग की अप्सरा!!!"

पास मे प्रेस का प्रूफ रीडर बैठा हुआ था। पण्डित साहित्या-चार्य जी के मुँह से उस प्रकार निकले वैसे शब्द सुनकर वह चौंक पड़ा। उसकी आश्चर्य भरी दृष्टि पंडित जी पर पड़ी। उसकी आँखे पण्डितजी की खिड़की से फॅसी नजर के सहारे जो उधर को गईं, तो उसके दिमाग मे बिजली-सी कौंध गई। उसके रूखे ओठों पर रङ्गीन मुस्कराहट थिरकने लगी।

प्रेस के सामने वाले ऊँचे मकान की चौथी मंजिल की अध-

खुली खिडकी से एक कोमल, गोल, रंगीन चेहरा झलक रहा था। और उसीने इतने सम्मानित साहित्याचार्य को आश्चर्य चकित कर अपनी ओर चुम्बक की तेज शक्ति से खींच रक्खा था। कुछ क्षण बीतते-न-बीतते खटसे खिड़की के बन्द होने का क्षीण-स्पष्ट शब्द सुन पड़ा। और साथ ही सुन पड़ी पंडित जी के विकराल मुंह से निकली दबी हुई लम्बी आह।

उन्माद का कारण खिड़की के पीछे विलीन हो चुका था। पडित साहित्याचार्य जी भी जागे। स्वप्निल संसार से उतर टपक कर वे उलझनों-झंझटों वाली कारबारी दुनिया मे आये। उन्होंने बडी-बड़ी कोशिशों से तैयारी कर युगों बाद अपनी प्रतिष्ठा की ऊँची गढ़ी खड़ी की थी। पर आज इस प्रेस के टुच्चे प्रूफ रीडर के सामने उनकी मॅजी सीखी आंखों और नपीतुली वाणी ने उनके साथ छल किया। वे भेद लेने वाली दृष्टि से प्रूफ रीडर की ओर ताकने लगे।

पर प्रूफ रीडर भी काफी खेला-सीखा युवक था। खिड़की के बन्द होने की आहट पाते ही वह संभल बैठा। ऐसा भाव बताया मानो वह प्रूफ पढ़ने-देखने मे इतना लवलीन है कि उसे तनबदन की सुध ही नहीं है।

पंडितजी के छानबीन मे प्रवीण नेत्रों ने ध्यान से देखा-पढ़ा। और उन्हें यह जान-समझ कर सन्तोष हो गया कि उनके क्षणिक उन्माद-आकर्षण की बात वैसे किसी पर प्रकट नहीं हो पाई है। साहित्याचार्य जी बहाने बना कर देर तक वहाॅ बैठे रहे, पर फिर उस समय उनके रहने तक न तो खिड़की ही खुली और न उस उन्मत्त बना देने वाली छटा की किञ्चित् झलक ही मिल सकी। घंटों ऊबते-उचकते-छटपटाते हुए तिरछी नजरों से खिड़की की लगातार निगरानी करते-करते अन्त में उकता कर वे अपने स्थान के लिये धीरे-धीरे खिसके। पर घर जाने के पहले उस प्रेस में

छपाई का अपना काफी काम देकर उस सम्बन्ध की सारी बातें विस्तार से समझाते रहे थे।

पण्डित जी घर गये तो, पर मन उनका प्रेस के सामने वाली खिड़की में ही छूट बैठा था। उन्हें दिन भर चैन न मिला। और अन्त में शाम होते-होते छपाई के क्रम को जानने बताने के सिलसिले में उन्हें फिर मजबूर होकर प्रेस आना पड़ा। और बजाय मैनेजर के पास बैठने के, वे आकर सीधे बैठे उसी प्रूफ रीडर के पास, उसी सबेरे वाली कुरसी पर, उसी सामने वाली खिड़की की ओर मुँह करके।

घंटे बीते। दिन आये और गये। और पंडितजी का राज प्रूफ-रीडर की मुस्तैदी-चालाकी से ज्यादा खुलने-फैलने न पाया। काम के बहाने पंडित जी घंटों नित्य उसी कुरसी पर सामने वाले मकान की ओर मुँह करके बैठते और कभी-कभी आकर्षक रूप-छटा की मधुर-मादक झांकी मिल जाती। प्रूफ-रीडर ने उपकार सेवाकार्य के विचार से सहायक-दूत-सन्देशवाहक और न-जाने क्या-क्या बनना स्वीकार कर लिया था। ऊपर से तो अनिच्छा-पूर्वक, परन्तु अन्दर से रकम ऐंठने और मजा लूटने की भावना से ही। हजारों पैगाम आये-गये। सैकड़ों वादे हुए और टले। पचासों फरमायशें हुईं और तोहफे भेजे गये। दर्जनों बार भेंट मुलाकात होते-होते और मनके अरमान निकलते-निकलते कोई-न-कोई विघ्न अचानक आ पड़ता और पण्डित जी को मान-प्रतिष्ठा बचाने की कोशिश में कैसी क्या भुगतनी पड़ती यह कहना कठिन है। रुपयों का खून होता सो अलग।

पाँच मास तक सभी सम्भव उपाय किये गये। जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाये गये। मजनू-फरहाद को मात देने वाली आशिकाना तर्जों को बीसवीं सदी के सुधारों-आविष्कारों की पुटें

दे-दे कर अमल में लाया गया। प्राचीन-नवीन साहित्य-सागर में गोते लगा-लगा कर जो अमूल्य-अपूर्व ज्ञान-रत्न हाथ लगे, उनका अचूक प्रयोग किया गया। रुपये का धुआँ बाधा गया। और अंत में एक अँधेरी रात में बारह के बाद एक मूर्ति एक निर्जन कमरे मे कपड़ों से लपटी श्री पण्डित जी के प्रेमपाश में आ ही तो गई। पर यह क्या !! उसने कर्कश स्वर से चिल्लापो मचाकर महाभारत रच दिया। जगहर हो गई। और पण्डित जी को बड़ी पूजा-भेट का सामना करना पड़ा। सवेरे जरूरी काम से उन्हें शहर से बाहर जाना पड़ा।

और जब वे सात मास के प्रवास के बाद उस शहर मे लौटे तो यह जान कर उनका कलेजा टूट गया कि जिसकी झलक ने उन्हे कहीं का न रक्खा, वह है केवल सात लडकियो और पाच लड़कों की माता। केवल कद के बेहद नाटेपन के कारण और खिलाई-पिलाई, रहन-सहन की सुघराई के सबब से बारह बच्चो की वह माता अपने रूप-रङ्ग को कुछ-कुछ संभाले रख सकी थी। और फिर पंडित जी के पचास बरस तक पोथियों क अक्षरो से जूझते रहने वाले शिथिल मुरझाये हुए नयन उतने ऊंचे चौथे मजिल की खिड़की की आट मे झकझकाने वाले रूप की परख करने में वैसे तेज साबित कैसे होते! शायद गले यौवन की झुलसानेवाली लपटो की चकाचौध का भी कुछ असर था। और था प्रूफ-रीडर की चालों का कमाल।

सब हुआ, पर पडित जी को अन्त तक उस रूप की छटा न भूली।

साधु का शिकार

लोगो का कहना है कि मैं बला की खूबसूरत हूँ, गजब की शोख़। और मुझे उनकी इस बात को मानने मे कोई भी एतराज नही है। मैं घन्टो आइने के सामने खड़े-खड़े अपने अपूर्व रूप-रङ्ग-सौन्दय-सौकुमार्य-आकर्षण की मादक मदिरा का रसास्वादन करती रहती हूँ। मेरे सामने पड़ते ही युवक मुझे बेतरह घूरेंगे, वृद्ध तक चुराचुरा-बचाबचाकर नजरों की चोटे करेंगे, स्त्रियाँ बार-बार कुढ़-कुढ़ कर तिरछी नजरो से देखेंगी, इसका मुझे सदा ध्यान रहता है और मैं इन सब के लिये इतनी अभ्यस्त हो गई हूँ कि मुझे अब इन बातो से तनिक भी संकोच या घबराहट नहीं होती।

इधर कुछ दिनो से मुझे इसका भी पूरा-पूरा पता चल गया है कि मेरे अग-प्रत्यंग में जवानी की अटूट बाढ़ आ रही है, मैं अपने जीवन के उस युग में पहुँच चुकी हूँ, जब ' भी परी नजर आती है। और मुझे तो लोग परी से भी कहीं अधिक सुन्दर-सुकुमार मानते हैं।

छुटपन से ही स्वच्छ, उत्तम दर्पणों, एवं भले-बुरे, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष प्रशंसको द्वारा मुझे अपनी असाधारण मधुर-उन्माद-कारिणी सुन्दरता के नित-नूतन प्रमाण मिलते ही रहते थे। फिर भला मैं अपने सर्व-विजयी प्रभाव से अनजान कैसे रह सकती।

एक बात और भी थी। मैं ज नती थी कि मेरे सामने आते ही मेरी मामी कुछ कुढ़ती-लजातीं-जलती-शरमातीं और थोड़ा-बहुत प्रसन्न-संतुष्ट भी होतीं। वे अपनी जवानी के उतार पर थीं। साधारण-सी सुन्दर। खूब मनचलीं। सदा टीमटाम, बनाव-सिंगार से अपने को अधिक-से-अधिक सुन्दर और ज्यादा-से-ज्यादा आकर्षक-मादक बनाये रहने में रत, शिकार की बेहद शौकीन,

किन्तु मान मर्यादा, अपनी इज्जत-आबरू को सुरक्षित रखने के लिए अत्यधिक सतर्क, प्रयत्नशील, व्यग्र।

चढ़ती जवानी को कायम रखने के लिए कुछ ऐसों-वैसों के फेर में पड़कर उन्होंने कुछ जतर-मंतर, जादू-टोने, दवा-दर्पन की शरण ली थी। शायद उसी के फलस्वरूप उनकी कोख कुछ ऐसी बिगड़ी कि फिर लाख कोशिश करने, आसमान के कुलाबे मिलाने पर भी बाल-बच्चा न हुआ, न हुआ।

इधर मेरे पैदा होने के कुछ ही दिन बाद मेरे पिता स्वर्ग सिधार गये थे। उनके वियोग में घुलघुल कर चार साल बाद माता ने भी उसी रास्ते को पकडा। मैं अकेली रह गई। और रह गई पिताकी खासी अच्छी जायदाद तथा खूब चलने वाली दूकान। मेरी नानी ने आकर मुझे संभाला और मामा ने सभाली पिता की दूकान एवं जायदाद। मैं नानी के लाड़-प्यार के बीच दूज के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगी। उधर दूकान-जायदाद पूनो की चॉदनी की तरह धीरे-धीरे छीजने लगी। पर दिन-दिन निखरने-वाले मेरे रूप और तिल-तिल बढने वाले सुन्दर-सुडौल अंगो पर इसका कोई विपरीत प्रभाव न पडने पाया। देखते-देखते मैं स्यानी हो गई, जवानी से अठखेलियाँ करती, रूप की राशि बिखेरती।

किन्तु जवानी के आने की सूचना के काफी पहले ही मेरी... लुटाई जा चुकी थी। वह भी मेरी शिकार-की-शौकीन मामी के षड्यन्त्र के कारण। मामी पास-पडोस मे तो जरूर ही, और जहाँ तक बस चलता अपनी बस्ती मे खूब बच-संभलकर चलतीं। किन्तु बाहर खुलकर खेलतीं, पूरी तौर पर अपने दिल के अरमान निकालती। और अपनी उमगो की पूर्ति के लिए वे हर दूसरे-तीसरे महीने या तो कहीं रिश्तेदारी मे किसी-न-किसी बहाने से जातीं या मथुरा-वृन्दावन-अयोध्या-काशी जाती। और तीर्थों में विशेष कडाई, अधिक परदा, ज्यादा देखरेख नहीं की रक्खी

जब तक मदमाते यौवन की भरपूर सहायता थी, तब तक तो शिकारों के मिलने में ज्यादा कठिनाई न पड़ती थी, किन्तु जैसे-जैसे उतार आने लगा, वैसे-ही-वैसे उनका अपने मन की मुरादों को पूरा करने में और-और साधनों की सहायता लेनी पड़ने लगी। दिन बीतते गये और अन्य उपायों की आवश्यकता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। जब ढाल काफी स्पष्ट हो गया, तब तो मन को बार-बार ठेसें सहनी पड़ीं, अन्य साधन भी प्रायः विफल होते देखे जाने लगे। बड़ा भयावह काल आ गया।

पर नये-नये मालों को चखने की जो लत एक बार लग चुकी थी वह बजाय घटने के, बढ़ती ही गई। और जब शिकार फँसते-फँसते रह जाता, तब तो मामी साहबा की दशा बहुत ही दयनीय हो उठती।

अन्त में उन्होंने एक उपाय रचा। अयोध्या के एक प्रसिद्ध अखाड़े में मंत्र ले लिया। दान-दक्षिणा, भेंट चढ़ोत्री द्वारा उन्होंने अपने गुरु तथा उन गुरु के अनेक चेले-चाटियों को अपने वश में कर लिया। फिर क्या था, वे लोग भी जान पर खेल कर ऐसी उदारदानी, धर्म पर सर्वस्व निछावर कर देने वाली भक्तिन सेठानी की हर तरह से सेवा सहायता करने लगे। अब बजाय अन्य स्थानों के, मामी ज्यादातर अयोध्या को ही जातीं और महीनों उस अखाड़े मे अपने मन के सन्तोष के लिए पूजा-अर्चा, चिन्तन-मनन, देवपूजा और साधु-सेवा मे व्यतीत करतीं।

और इसी धर्मानुष्ठान मे मेरे अनंकुरित, अज्ञात यौवन एव अपरि-लक्षित-सतीत्व की भेंट चढ़वा दी गई थी। कहानी करुण है, और है कुटिल-कपटता से ओतप्रोत।

मैं अपने ग्यारहवें वर्ष को पार कर बारहवें में आधी से अधिक धंस चुकी थी। शरीर मेरा कुछ अधिक हृष्ट-पुष्ट था। रूप-रंग के सम्बन्ध मे तो कह ही चुकी हूँ। मामी के साथ कई

अवसरों पर मैं अयोध्या की यात्रा कर चुकी थी। मेले-तमाशों की मैं वैसे भी शौकीन हूँ। धार्मिक समारोहों में विशेष आनन्द आता है, क्योंकि उनमें कठोरतम सामाजिक बंधन भी काफी ढीले कर दिये जाते है। हाँ, तो जब मैं बारह को पार करने की धुन मे थी, उसी समय एक बार मामी को तीर्थयात्रा, साधु-सेवा की सनक सवार हुई। इस बार उन्होंने आग्रह कर मुझे भी अपने साथ ले लिया। मामा तो पहुँचा कर लौट आये। मामी महीने भर रह कर एक अनुष्ठान करना चाहती थी। मै भी उनके साथ रह गई।

व्रत-अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। सबेरे मुँह-अंधेरे उठ कर सरयू-स्नान जरूर होता। वहाँ की बहार ही निराली थी। और उससे कम आनन्द न आता लौटते समय अनेक मन्दिरो मे जा-जा कर देव-दर्शन करने मे। कथा-वार्ता भी चलती। साधु-सेवा, भोजन-दान भी होता। कई दिन बड़े सुख से मौज में बीते।

इस बार प्रारम्भ से ही मुझे मालूम हो गया था कि उस स्थान के कुछ नवयुवक अधिकारियो की दृष्टि मुझ पर है। उनमे भी एक सुन्दर, सुडौल, हृष्ट-पुष्ट नवयुवक खास तौर पर मेरे पीछे पड़ा हुआ था। वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते सदा मेरे पीछे लगा रहता, मुझ पर ही दृष्टि लगाये रहता।

किन्तु मैं तो एक प्रकार से इस तरह की ऐसी सभी बातो की अभ्यस्त-सी हो गई थी। छुटपन से ही लड़के मेरे पीछे-पीछे घूमते, लड़कियाँ मेरे हुक्म मे चलती। युवक मेरे इशारो पर थिरकते। मैंने विशेष ध्यान उस साधु-युवक की ओर न दिया। अपने इस अपूर्व प्रभाव पर मुझे एक प्रकारसे गर्व-सा ही हुआ।

वह युवक उस स्थान के अन्य सभी व्यक्तियों से अधिक सुन्दर-सुडौल था। फलतः शिकारिन-मामी की नजर उस पर पड़े बिना न रही। वह उस स्थान मे नया ही आया था। मामी भला ऐसे शिकार को कैसे जाने देती। वे उस पर फंदे डालने लगीं

युवक पहले तो उनसे बचता रहा, फिर उसने उनके प्रति केवल उपेक्षा ही नहीं, घृणा के भाव प्रदर्शित करने प्रारम्भ किये। मामी जितना ही अधिक उसको अपने वश में लाने की चेष्टा करतीं, वह उतना ही अधिक उनसे अलग रहने, दूर भागने का प्रयत्न करने लगा।

इसी दाँव-पेच में पन्द्रह दिन बीत गये। मुझे इस बारकी इन शतरंजी चालों मे बड़ा मज़ा आ रहा था। इसके पहले भी मैंने मामी के करतब देखे थे। पर इधर कुछ समय से मैं भी अपने को कुछ लगाने लगी थी, मेरे अंगों मे भी सिहरन होने लगी थी, हृदय में गुदगुदी उठने लगी थी, मन उमंगों के झूलो पर पैगें लगाता जान पड़ता था, इच्छा होती कि चन्द्रमा की किरणों के सहारे आकाश की सैर करूँ। किसी युवक को अपनी ओर ताकते देख, मेरे हृदय में भी हलचल पैदा होने लगती थी।

इसी नूतन भाव परिवर्तन के कारण मामी के इस खेल में मुझे रस मिल रहा था। मैं उनके भावोंको कुछ-कुछ समझने लगी थी, उससे मुझे कुछ आनन्द जरूर मिलने लगा था।

एक दिन मैंने देखा, वह युवक साधु मामी से हँस-हँस कर बातें कर रहा है। मामी ने उसे भोजन के लिए निमंत्रित किया था। वह उनके बहुत आग्रह करने पर भी इसके पूर्व कई बार भोजन से साफ इनकार कर चुका था। आज वही मामी के सामने बैठा मौज से मालपुए उड़ा रहा है। मैंने सोचा, मामी का निशाना ठीक बैठा, वे शिकार मे पूर्ण रूप से सफल रहीं।

उसके बाद प्रति दिन उस साधु को भोजन कराया जाने लगा। और तीसरे दिन से उसके भोजन-सेवा की सारी व्यवस्था मेरे सर पर पड़ी। पहले तो एक साधारण बात समझ कर मैंने स्वीकार कर लिया। किन्तु पहले ही दिन मुझे पता चल गया कि

भोजन कराना उतना साधारण, सरल और निरापद नहीं है। भोजन के लिये आते समय उस साधु ने मेरे हाथ से जल का लोटा इस प्रकार से लिया कि मेरा हाथ उसके हाथ मे आ गया। मेरी आँखो में अपनी शोख आँखे डाल कर वह मुस्करा पड़ा। मेरे शरीर मे बिजली दौड़ गई। इसके बाद अनेक बहानो से उसने मेरे किसी न किसी अंग को छूने की चेष्टा की। भोजन कराना कठिन हो उठा। मैं अपने रूप की प्रशसा से प्रसन्न अवश्य हो उठती थी, किन्तु इस प्रकार अनुचित छेड़छाड़ मुझे तनिक भी सह्य न थी। और खास तौर पर अब, जब मैं ऐसी छेड़छाड़ का अन्तिम परिणाम और यथार्थ मतलब खूब अच्छी तरह से समझने लगी थी।

साधु के जाते ही मैंने मामी से उसकी शिकायत की। सोचा था, मामी उसकी बेजा हरकतो से क्रोधित हो उठेंगी। किन्तु यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि वे उल्टे मुझी को समझाने-सिखलाने और फुसलाने लगीं। मैंने खीझकर उनसे साफ-साफ कह दिया कि वह साधु नही है, लम्पट है और मुझे कुमार्ग मे ले जाना चाहता है। मामी ने मुझे उत्तेजित देख कर शान्त किया।

रात को उन्होंने मुझे अनेक कथाएँ सुना कर, दृष्टान्त देकर यह विश्वास दिलाना चाहा कि साधु-सेवा के लिये कुछ भी करना बुरा नहीं है, साधु के रूप मे भगवान लीला करते है और अपने भक्तों की परीक्षा लेते है। दूसरे, साधु की प्रत्येक इच्छा-आकांक्षा की पूर्ति करने से ही प्राणी सब पापो से छूट जाता है, स्वर्ग में उसे सुख मिलता है।

मामी की बातें मेरी समझ में नही आईं। पर मैं उनको कुछ उत्तर न दे सकी। उसके बाद से मैं अपने को बचाती हुई, उस साधु को खिलाने पिलाने की व्यवस्था करने लगी। मामी सदा ऐसे अवसरो पर उस स्थान से हट जाती थीं। साधु ने समझा

कर, प्रलोभन देकर, मीठी-मीठी बातें करके मुझे फँसाना चाहा, पर मैं उसके चंगुल में न फँसी। अन्त में एक दिन जब सब लोग उस स्थान से कहीं चले गये थे, और मामी भी आस-पास के पुरुष-स्त्रियों के साथ बाहर गई हुई थीं, वह साधु आया और मुझे फुसलाने लगा। जब मैं किसी तरह राजी न हुई तो उसने जबर्दस्ती मुझे भ्रष्ट किया। मैं चीखी-चिल्लाई, पर किसी ने न सुना। साधु पूरा जवान था, मेरी उम्र कम थी; मेरा पहला ही अवसर था। खून के फव्वारे छूटने लगे। मैं एक प्रकार से बेहोश हो गई। तो भी उसने मुझ पर दया न की।

कुछ समय बाद मामी लौटीं। उस साधु ने खून को धो-धा कर साफ करने की चेष्टा की थी, पर वह पूरी तरह साफ न हुआ था। मामी को पाकर मैंने रो-रो कर सारी करुण-कहानी उन्हें सुना दी। वे मुझी को डाटने-दबाने लगीं और इज्जत-आबरू का भय दिखला कर मुझे चुप रहने का उपदेश देने लगीं। पर मुझे शान्ति न मिली। सारा हाल पास-पड़ोस वालों को मालूम हो ही गया। उस स्थान में बड़ा होहल्ला मचा, बावेला खड़ा हो गया। साधु ऐसा भागा कि फिर उसका पता न चला। गुप-चुप रीति से मेरा इलाज कराया गया। एक महीने के बाद मुझे लेकर मामी घर लौटीं।

इस घटना का मुझपर बड़ा असर पड़ा। कुछ समय तक तो मैं अपने रूप को देखकर जल उठती। महीनों आइना देखना बंद रहा। मुझे अपने रूप पर उतना ही क्रोध आता जितना कि किसी को अपने घोर-से-घोर शत्रु पर आ सकता है। मैं अपने रूप को अपने लिए काल समझने लगी थी। और खासकर इसलिए तो और भी कि मैं बाल-विधवा थी। माता ने अपनी दिली मुराद पूरी करने के लिए मरने के पहले ही मेरा विवाह कर सुख का अनुभव किया था। और उनकी मृत्यु के एक वर्ष बाद ही मैं विधवा भी हो

गई। पर मुझे न तो विवाह की तनिक भी याद है और न अपने पिता-माता की क्षीणतर स्मृति ही। पर मुझे समाज की रूढ़ियों के फल जीवन भर भोगने हैं; और वे भी इस अलौकिक रूप-सौन्दर्य के भार को ढोते हुए। ऐसी दशा मे तीर्थ स्थान में साधु वेषधारी नर-पिशाच के द्वारा केवल रूप के कारण बलात्कार के असह्य कष्ट को कच्ची अवस्था में सहन करने के निमित्त विवश होने के बाद, यदि उसी रूप पर क्रोध हो, तो विशेष आश्चर्य की बात नहीं मानी जा सकती।

किन्तु यह क्रोध अधिक दिन तक न चल सका। आयु के साथ ही साथ मेरे अंग-प्रत्यंग में यौवन की उमगे-तरंगे अधिकाधिक लहरे मारने लगीं। धीरे-धीरे अयोध्या की दुःखद घटना मेरे स्मृतिपटल से क्षीण होने लगी, अपना रूप-यौवन फिर हौले-हौले अपने को ही भाने लगा। मै फिर मदमाती होकर झूमने-थिरकने लगी।

मामी से यह भाव-परिवर्तन छिपा न रहा। उन्होने मुझे अपने प्रेम-रहस्यो मे सम्मिलित करने की चेष्टा प्रारम्भ की। मैं भी धीरे-धीरे उनकी बातो मे रस लेने लगी। उनकी शिक्षा थी कि बेवा जीवन भर अपने को अछूती नही रख सकती, इस कारण ऊपरी मान-मर्यादा को बनाये रखकर मन की साधें पूरी करते रहने मे कोई दोष नहीं होता। मैं भी समझती थी कि जीवन-योही व्यतीत कर देना हॅसी-खेल नही है। पर उस घटना की भयावह स्मृति मुझे बराबर चार वर्ष तक अपने को अछूता रखने मे समर्थ रही।

चार वर्ष बाद मैं नानी, मामी, मामा के साथ फिर अयोध्या गई। चैत्र का सुहावना महीना था। नौमी को भीड काफी कम हो गई थी। एकादशी तक चौथाई यात्री भी नहीं रह जाते। ठीक

दोपहर के समय मैं स्थान के बाहर वाले बड़े फाटक के समीप योंही मन बहलाने के लिए टहलती हुई चली आई। फाटक के अन्दर दोनों ओर लम्बे चबूतरे-से बने थे। उन पर बहुत से यात्री पुरुष, स्त्री, बालक, बालिका, युवति-युवक विश्राम कर रहे थे। आस-पास के वृक्षों के नीचे भी सैकड़ों यात्री आश्रय लिये हुए पड़े थे। प्रायः सभी साधारण श्रेणी से भी कुछ नीचे स्तर के थे, जाति से नहीं, केवल आर्थिक दृष्टि से ही।

हाँ, तो बड़े फाटक के अन्दर वाले एक चबूतरे पर दीवाल के सहारे एक सुन्दर, सुडौल युवक बैठा था। रंग गेहुंआ था, बड़ी-बड़ी रसीली आँखे, छरहरा बदन। चेहरे पर उदासी और चिन्ता की स्पष्ट छाप थी। किन्तु इस स्थिति मे भी वह अत्यधिक आकर्षक देखपड़ता था। उस पर नजर पड़ते ही सहसा मेरा मन उसकी ओर बरबस खिच गया। मैं देर तक दूर से उसकी ओर देखती रही।

कपड़ो के मैले होने पर भी स्पष्ट था कि वह उस स्तर और स्वभाव के व्यक्तियो में से न था, जो ऐसे स्थानो पर आश्रय लेते हैं। शायद उस पर कोई विपत्ति हाल मे ही पड़ी है। मेरा मन उसके सम्बन्ध में सारी बातो को जानने के लिए बेचैन हो उठा। पर पूछा कैसे जाय?

मैं हौले-हौले युवक के समीप जा पहुँची। कुछ समय बाद उसने अपने पास बैठे एक मनुष्य से कहा—'भाई! मैं परदेशी हूँ। यहाँ रामनौमी के मेले मे आया था। कारणवश अपने साथियो से छूट गया हूँ। मेरे पास लोटा नहीं है। आज सबेरे से मुझे पतले दस्त लगते हैं। मेरी पोटली अपने पास रखलो और थोड़ी देर के लिए मुझे अपना लोटा दे दो।'

उस मनुष्य ने ऐसी भोड़ी भाषा मे इतना बेहूदा उत्तर दिया कि युवक तिलमिला कर चुप रह गया। मेरे लिए यही स्वर्ण

सुयोग था। मैंने सहसा आगे बढ़कर कहा 'आप इन दुष्टों की बातों का विचार न करें। मैं आपको अभी लोटा लाये देती हूँ। परदेश में हमें एक दूसरे की जहाँ तक हो सके सहायता करनी चाहिए।'

युवक कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखने लगा। तेजी से जाकर मैं एक लोटा ले आई। युवक धन्यवाद देकर उठा और पोटली मेरे हाथ में थम्हा कर एक ओर चला गया। मैं वहीं बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने लगी। कोई १५ मिनट बाद वह लौट आया और लोटा देते हुए मधुर स्वर में बोला—'आप ने बड़ी कृपा की। मैं बड़े कष्ट में था।'

लोटा लेकर उसकी पोटली देते हुए मैंने उत्तर दिया—'यह तो साधारण बात है। इसमें धन्यवाद की बात ही क्या है। अब आपका पेट कैसा है?'

युवक—'कैसा बतलाऊँ। दर्द-वर्द तो कुछ है नहीं। योंही कुछ पतला पानी-सा जाता है।'

मैंने कहा—'शायद बाजार की पूड़ी-मिठाई के कारण पेट गरम हो गया है।'

युवक—'यही बात है। इधर कई दिन से बाजार की पूड़ी-मिठाई पर ही रहना पड़ा था।'

देर तक मैं खड़ी-खड़ी उससे बातें करती रही। बातों ही बातों में पता चला कि वह प्रयाग में पढ़ता है। कुछ मित्रों के साथ मेले में आया था। जहाँ ठहरे थे, वहाँ उनके सारे सामान की चोरी हो गई। मित्रों में आपस में कुछ कहासुनी भी हुई। मानापमान के विचार के कारण उसे उनका साथ छोड़कर चले आना पड़ा। यहाँ उसका कोई परिचित नहीं है। वापसी टिकट और रुपये-पैसे सभी चोरी चले गये हैं। अब उसके सामने घर लौटने का विकट प्रश्न है। ऊपर से है दस्तों की शिकायत।

इसी समय उसने फिर लोटा माँगा।

इतनी ही देर मे वह मेरे लिये अपरिचित क्या, पराया न रह गया था। मैं उसे अपने स्थान पर ले आई और उसके लिए रहने आदि की समुचित सुविधा कर दी। पहले तो वह राजी न होता था, उसका कहना था कि मै तुम लोगों के लिए सर्वथा अपरिचित हूँ, मेले-ठेले में अनेक सफेदपाश-सभ्य-बदमाश लोगों को और खास कर युवतियों को भलमनसाहत के फन्दे में फाँसकर ठगते हैं। पर मैंने उसकी बाते हँसकर टाल दी और उसे समझा-बुझाकर एक कमरे मे ठहरा लिया। नानी और मामा को पहले कुछ आपत्ति-सी थी। पर मैंने उन्हें समझा लिया। मामी तो उसे देखते ही मुस्करा कर यह कहती हुइ 'गुरुजी' की सेवा के लिए चली गइ थी, कि अतिथि-सेवा परमधर्म है, न जाने किस वेष मे भगवान मनोकामना पूर्ण करते हैं।

युवक का नाम मनोरम था। वे प्रयाग में इसी वर्ष एफ० ए० की परीक्षा में सम्मिलित हुए थे। घर मे केवल माता हैं। गरीबी के कारण शाम-सबेरे कुछ काम करके अपना खर्चा किसी तरह चलाते हैं।

मैने कपूर, अजवायन का सत और पिपरमेंट एक में मिला-कर औषधि तैयार की और उसकी दस दस बूँदे बताशे के साथ मनोरम को देना शुरू किया। दूसरी ही खूराक के बाद जादू का सा असर हुआ पेट की गर्मी एकदम दूर होगई, दस्त बन्द हो गये। मनोरम कृतज्ञता से विभोर हो उठे। वे मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

उसी दिन 'त्रेता के ठाकुर' के पट खुलने का अवसर था। मंद-मंद वायु चल रही थी। आकाश मे पूर्ण-प्राय चन्द्रमा अपूर्व छटा बिखेर रहा था। संध्या के कुछ पहले ही हम सब सरजूजी के किनारे गये थे। मनोरम भी साथ में ही थे। उनकी धार्मिक-श्रद्

भरी बातो से नानी और मामा उनके बड़े भक्त हो गये थे। और उन की उठती जवानी तथा सुन्दर बड़ी-बडी मतवाली आँखो ने मामी को गुलाम बना दिया था। भला वे क्यो उनका पक्ष न लेती, हार्दिक स्वागत न करती। रहा मैं, सो न जाने क्यो मै तो पहली दृष्टि पड़ते ही उन पर अपना सर्वस्व वार चुकी थी।

उनके साथ चन्द्रमा की शीतल किरणों से धुली सरजू की रेत मे चलना मुझे बड़ा भला मालूम हो रहा था। उनकी प्रत्येक बात से मेरे शरीर भर मे पुलक उठ आता। उनकी मधुर मुस्कान मेरे मन मे गुनगुदी पैदा कर देती। उनकी आँखो से आँखें मिलते ही मैं उमंगो की पगो पर चढ़ कर न जाने किस सुखद लोक में जा पहुँचती। मेरे हृदय मे आज ऐसे भाव हिलोर लेने लगे थे, जिनका इसके पहले मुझे कभी न तो अनुभव ही हुआ था, और न इस समय पूरी तरह से जिनको समझ ही सकती। केवल इतना भान था कि मैं इस समय आनन्द के महासागर मे हिलोरे ले रही हूँ।

रास्ते मे अनेक मन्दिर पडे, अनेक खेल-तमाशे मिले उन सब को मैं देखती जा रही थी, पर मझ किसी का ध्यान न था। यदि कोई भाव था तो केवल यही कि मैं मनोरम के साथ मे, उनकी बगल मे हूँ, वे बीच बीच में कुछ बहुत ही मधुर, अत्यन्त सुखद, हृदयग्राही बातें कहते जाते हैं। और सचमुच अनजाने मे उन्ही के साथ-साथ चल रही थी और कभी-कभी मेरा शरीर उनके शरीर से छू जाता था, उनके हाथ की अगुलियाँ, मेरे हाथ से लग जाती थीं। ऐसे अवसर पर मेरे बदन मे बिजली दौड़ जाती थी, सारे शरीर मे रोमांच हो आता था। मन मयूर नाच उठता था।

दर्शन करते मेले-ठेले का मजा लूटते, हम लोग तुलसीदास

जी के मंदिर की आरती देखने जा पहुँचे। हजारों की भीड़ थी। बदन से बदन छिलता था। दम घुटा जाता था। धक्कों के मारे नाक में दम था। ठेलम-ठेल इतनी थी कि यदि कोई तनिक चूक जाय तो उसकी हड्डी-पसुली की धूल भी शायद न मिले। पर आरती के समय उपस्थित रहने के असीम पुण्य को सहसा समेटने के लिए हजारों स्त्री-पुरुष उन सब यातनाओं को सहने के लिए सहर्ष उपस्थित थे।

किसी तरह ठेल-ठाल कर मनोरम और मामा ने एक किनारे हम लोगो को खड़ा करने के लिए तनिक-सा स्थान किया, और हम सभी दब-दबा कर किसी तरह पुण्य लूटने के लिए अड गये। आरती होने मे कुछ मिनट की देर था। किन्तु उतनी ही देर मे कई रेले आये और हमे बहा कर दूर दूसरे स्थान पर ला खड़ा किया। इन उलट-फेरो मे संयोगवश नानी-मामी आगे, मामा उनके पीछे, मामा के ठीक पीछे मैं और मेरे एक दम पीछे आ रहे मनोरम। हजार चेष्टा करने पर भी हम लोग अपने स्थानों को बदल न सकते थे। इस नवीन रद्दो-बदल के कारण मैं एक प्रकार से मनोरम के बाहु-पाश मे जा रही थी। वे पीछे हट-हट कर बारबार मुझ से अलग रहने की विफल चेष्टा कर रहे थे। कुछ समय तक मैंने भी अपने शरीर को अछूता रखना चाहा। पर एक तो बाहर लोगो की भीषण ठेलम-ठेल और दूसरे अन्दर से मन की बेतरह उमड़ने वाली भाव-धाराओ के भंवर-जाल मे फँस कर बरबस बहा ले जाने वाली तीव्र-गति के सामने मुझे विवश हो जाना पड़ा। दूसरो के धक्को से कष्ट उठाने के बजाय अपने मनोनीत सहचर के अंक के संघर्ष को मैंने उत्तम समझा। इसी समय एक रेला ऐसे जोर का आया कि मैं गिरते-गिरते बची। कुछ तो मामा ने अपने शरीर का सहारा दिया और कुछ मनोरम ने अपने बलिष्ठ बाहु-युगुल से सभाला, मैं गिरने से बच गई और आ गई पूरी तरह

से मनोरम के बाहुओ के बीच। मैंने भी अपने दोनों हाथो से कस कर पकड़ लिये। मेरे सहसा रोमाच हो आया। शरीर सिहर उठा, पुलक-प्रकंपन के साथ ही स्नेह-मौक्तिक झलक आये, पर मैं उसी दशा मे, उनके बाहुओ के बीच ही खड़ी रही। एक अपूर्व अनिर्वचनीय आनन्द मे विभोर।

मनोरम के मन मे भी नाना प्रकार के भावो की आँधियाँ उठ रहीं थीं, उनके भी हाथ काँप-से उठते थे। उनके चौड़े वक्षस्थल से खूब सटी रहने के कारण मुझे स्पष्ट पता चल रहा था, कि उनका हृदय बड़े वेग से धड़क रहा है।

देर तक हम लोग एक दूसर का स्पर्श-सुख अनुभव करते उसी प्रकार खड़े रहे। अन्त मे आरती प्रारंभ हुई। रेल-पेल मे और भी अधिकता हो गई। धक्कम-धक्का बढ़ गय। भीड़ मे लहरे इतनी तीव्रता से उठने लगी कि एक स्थान पर ठहरे रहना कठिन ही नही असम्भव-सा हो उठा। कई रेले आये और हमे बहाने लगे। अन्त मे आरती के समाप्त होते-न-होते, मुझे पता चला कि मैं मनोरम के बाहुपाश मे रहने के कारण उन्हीं के साथ एक ओर जा पडी हूँ, मामा, मामी, नानी का कहीं पता तक नही है। पहले तो मुझे भय सा लगा, किन्तु अपने को अकेले मनोरम के साथ पाकर प्रसन्नता भी हुई। मैं इस शुभ्र चादनी मे उनसे एकान्त मे बातें तो खुल-कर कर सकूगी।

अन्त मे आरती समाप्त हुई। हम दोनो बाहर निकले। मनोरम ने नानी-मामा को तलाश की, पर पता न चला। हार कर हमने स्थान पर चलने का विचार किया। रास्ता बस्ती मे होकर सीधा जाता था। पर मैंने सरजू के किनारे जाने की हठ की। मेरी आँखो मे आँखे डालने के बाद मनोरम भी राजी हो गये।

हम दोनो घंटो कलकल नादिनी सरजू के तीर कोमल, रुपहली बालू मे लेटे प्रेम भरी बाते करते रहे। प्रणय-प्रेम का यह प्रथम

ही अवसर था। मनोरम पहले तो बहुत सकुचा रहे थे। शायद उन्हें तनिक भय या शंका रही हो पर मेरे मादक रूप, असीम-अगाध प्रेम, मधुर सभाषण, हृदयोद्वेलनकारी कुटिल कटाक्ष, उन्मन्थनकारी तीव्र मधुर मुस्कान ने, तथा मदोन्मत्त करने वाले प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों ने उनको भी पागल-सा बना दिया। देर तक हम एक दूसर के अंक में पड़े प्रेम-प्रदर्शन करते रहे और अन्त मे . ।

जब हम स्थान पर लौटे तब सबेरे के चार बज चुके थे। नानी, मामा आदि का चिन्ता की सीमा न थी। स्थान वालों ने उनसे स्पष्ट कह दिया था कि मनोरम मुझ फुसला कर ले भागा है, अस्तु पुलिस में रिपोर्ट करके वारंट जारी कराया जाय। मामी भी व्यग्र थीं। पर नानी वारंट जारी कराने के लिए किसी तरह भी तैयार न हो सकीं। और इसी बीच मे मैं मनोरम के साथ उनके सामने जा पहुँची।

नाना प्रकार के प्रश्न किये गये। पर अन्त मे सब शान्त हो गये। हमने भी अघाकर साँस ली।

इसके बाद हम कई दिन और अयोध्या मे रहे। मामी ने मनोरम पर अपने जादू को चलाने, फन्दे डालने मे कसर न की। किन्तु मनोरम ने भूल कर उनकी ओर ताका तक नहीं।

हम दोनो ने बकायदा विवाह कर लेने की जो ठान ली थी।

मैंने अपनी सारी गुप्त-प्रकट बातें मनोरम को स्पष्ट शब्दों में बतलादी थीं। मैं उनसे कोई दुराव-छिपाव न रखना चाहती थी। मैंने देखा, वे भी आवश्यकता और आशा से अधिक उदार समझदार निकले। उन्हें विश्वास हो गया कि मैं उनकी सहायता-सहयोग से शुद्ध-सच्चरित्र और मर्यादापूर्ण सुखी जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ। वे भी मुझे हृदय से प्यार करते थे। हम लोग प्रेम एवं विवाह के बन्धन मे बँध गये।

पहले नानी, मामा, मामी ने घोर विरोध किया, पर अन्त में उन्हें शान्त होना पड़ा।

मनोरम ने एम० ए०, एल-एल० बी० पास कर वकालत प्रारम्भ की। आज १५ वर्ष बीत गये, मेरे दो पुत्र, दो कन्याएं हैं, और है सुखी, स्वच्छ जीवन।

किस-किसने न सूँघा-मला-फेंका

रस रङ्ग भरे गानों ने गॉव भर में धूम मचा दी थी। नये कारिन्दा साहब का अनोखा, मन-लुभानेवाला, ग्रामोफोन जो शाम से सुरीली तानें छेड़ने लगता तो आधी रात से अधिक पार कर देता। और अक्सर ही जब सबेरे की लाली हौले-हौले आकर आसमान में छा जाती, तब कहीं शायद बजानेवालों को आश्चर्य-भरा होश होता और वे चौंक कर विवश हो राग-रङ्ग से मुँह मोड़ते। गॉव के, और आस-पास के गॉवों के नवयुवक-नवेलियाँ ही क्या, अधेड़ और बूढ़े स्त्री पुरुष तक ठठ के-ठठ शाम से ही आ डटते और बाजे के बन्द होने के बाद ही वहॉ से टलते। नई-नवेली अल्हड़ बछेड़ियॉ तो जान देने लगी थीं।

किन्तु कुछ ही दिन बीतने पर लोगों से वह पहले का-सा असीम-अटूट प्रेम-उत्साह न रह गया। खासकर नई बहुओं और नये उभार पर पहुँचने वाली लड़कियों पर गॉव वाले बड़े-बड़े प्रतिबन्ध लगाने लगे। ज्यादा रात गये उनका आ-जा सकना एक तरह से बिल्कुल बन्द ही कर दिया गया। सरे-शाम भी उन्हें

आने देने के लिए घरवाले सहसा राजी न होते। इसका विशेष कारण था। ग्रामोफोन की रसीली, सुरीली तानों के मादक प्रभाव के बीच से यदि कहीं कोई अधेड़ या वृद्ध चौंक कर चौकन्नी नज़र इधर-उधर फेंक सकता, तो उसे अनायास ही झलक पड़ता कि इस मधुर गान-तानवाले अलौकिक-अखण्ड अनुष्ठा की टट्टी की आड़ से किसी खास किस्म के सुन्दर शिकार पर अनियन्त्रित अलक्षित निशाने लगाने का कलापूर्ण कोमल किन्तु अचूक आयोजन, अखंड अविचल भाव से चल रहा है। और जब तक कुछ अनुभवी वृद्ध वीर सजग हों, तब तक अनेक धावे बोले जा चुके थे और कई सुदृढ़, सुरक्षित अगम्य किले फतह किये जा चुके थे। और जो मामूली मुहिमे सर कर ली गई थीं, उनका तो हिसाब लगाना ही व्यर्थ जान पड़ा। फलतः, लोगों ने आपस में फुस-फुस, भुन-भुन करने के बाद तय किया कि जो हो गया, उस पर तो धूल डाल दी जाय और अब आगे से ऐसा कड़ा प्रबन्ध किया जाय कि जो कुछ किसी तरह से छूता-अछूता बच-बचा गया है, वह तो बे-हाथ न होने पावे।

गाँववालो ने मिल-मिलाकर अपनी नवोढ़ा बहुओं और यौवन मदमाती पुत्रियो की रक्षा-अवरोध का यथाशक्ति भरपूर प्रयत्न प्रारंभ किया। ऊपर से देखने-दिखाने के लिए वे सफल भी हो गये। पर वंशीवट की मादक, सुरीली तान की तरह ग्रामोफोन के रसीले रेकार्डों के स्वर उस गाँव की युवतियो को बरबस जान-अनजान मे अपनी ओर खींच ही लेते।

किन्तु बदनामी अपना असर दिखलाये बिना रहती नहीं। रोब-दाब ने नये रसीले कारिन्दा के किसी काम में वैसे विशेष विघ्न न पड़ने दिया। किन्तु उनके पास लड़कियो और युवतियों का खुलकर आना आसान काम न रह गया। गाँव में चर्चा जो

होने लगती। मेरी उम्र उस समय बस यही केवल खेलने, खाने, किलोलें करने, मिछराने-मटकने भर की ही तो थी। पर मुझे पेट के लिए काम करना पड़ता था। जात भी जो छोटी ही थी, और स्थिति और भी ज्यादा संकुचित। बाप का सुखद, स्वच्छन्द राज्य किसे कहते हैं, यह मैंने ठीक से जाना ही नहीं। एक अकेली माँ थी, जो रात-दिन हम तीन भाई बहिनों को खिला-पिलाकर जिला रही थी। हम तीनों भाई-बहिन भी अपने नन्हे-नन्हे हाथों से जो-जैसा होता थोड़ा-बहुत काम-धन्धा करते कराते रहते।

रसीले कारिन्दे साहब ने मेरी बड़ी बहिन को घर के काम-धन्धे के लिए नौकर रखना चाहा। पर ज्यादा लोभ का लोभ गाँव वालों के भय के आगे ठहर न सका। मेरी बहिन की उम्र कोई पन्द्रह-सोलह साल की थी। इस कारण माँ ने उसे कारिन्दे के यहां भेजना उचित न समझा। कुछ दिन बाद मुझे नौकरी के लिए बुलाया गया। मैं भी बारह के पार जा पहुँची थी, इससे माँ ने मुझे भी न भेजा। लेकिन दोनों दफे माँ को साफ-साफ नाहीं करने की हिम्मत न पड़ी। कारिन्दे को नाराज कौन करना चाहेगा! बहिन के लिए उसके ससुराल वालों का बहाना बनाया गया और मेरे लिए मेरी एक गढ़ी हुई बीमारी की आड़ ली गई। पर कारिन्दा निकला हम लोगों से भी ज्यादा छँटा आदमी, कहीं अधिक मँजा-अनुभवी खिलाड़ी। उसने हमारे छोटे भाई को आखिर अपने पास नौकर रख ही लिया। और माँ ने भी इस बार बहाना बनाने की जरूरत न समझी।

किन्तु दस-बारह दिन में ही मुझे पता चल गया कि देहात में जन्मे-पले मेरे भोले-अबोध भाई में भारी परिवर्तन हो गया है। वह दुनिया की सभी जानने-न-जानने वाली गुप्त-प्रकट बातों-बातों

को रसीले कारिन्दे की कृपा से सीख-समझ चुका है। एक-दो बातें तो ऐसी थीं जिनकी कल्पना भी गाँववाले आसानी से कर नहीं सकते। वह तो शहरों मे ही रायज है, और शहरो मे भी ऊँची समाज की नई रोशनी और अगली पौध मे ही। किन्तु जब तक मुझे इन सब अनाखी अनहोनी बातो की घात का पता पूरी तरह से चले-चले, और मै उनको अकल्पित जानकारी के बेहोश करनेवाले तीखे प्रभाव से सँभलूँ-सँभलूँ, तब तक मै खुद भी मुँह बन्द कर देने वाले झीने-झीने सरस लासे में जा फसी। और रसीले कारिन्दे के चंगुल मे पड़कर आज मेरी दुनिया ही बदल गई है, हुलिया ही और की और हो गई है, मैं खुद ही भीतर बाहर एक दम कुछ को-कुछ हो उठी हूँ। कैसा जादू-का-सा तमाशा हो गया तनिक सी बात मे!!

रसीले कारिन्दे की नौकरी के साथ ही कुछ दिनो में भाई की हुलिया बदल गई थी। वह साफ कपड़े-पहिनने लगा था। बदन और खासकर चेहरा काफी साफ, एकदम लकदक रखने लगा था। बालो मे तेल की चिकनाहट रहने लगी थी। एक अजीब मस्ती पैदा करने वाली भीनी-मीठी खुशबू भी फैलती रहती। ओंठों पर पान की लाली और उमग-भरी मन्द मुस्कुराहट छाई रहती। ज्यादातर हल्की गुनगुनाहट भी गूँजती रहती। जैसे वह किसी मस्तानी समाँ का मजा लूट रहा हो। हम लोगों का ध्यान इस परिवर्तन की ओर विशेषरूप से आकृष्ट हुआ था भय के कारण, कि कहीं लड़का चोरी न करता हो। पर जब खुद कारिन्दा साहब ने माँ को बुलाकर एक दिन साफ कह दिया कि मैं अपने नौकर-चाकर को अपने से कहीं बढ़कर रखता हूँ, तब हमारा डर जाता रहा। हमे खुशी हुई कि ग्यारह-बारह बरस के लडके को अब पेट भर अच्छा खाना और तन ढकने को साफ कपड़े तो भाग्य से मिलने लगे। हम सब कारिन्दा को असीसने लगे।

इसी बीच में भाई ने मुझे खाने-पीने की अच्छी-अच्छी चीजें देनी शुरू की। फिर पैसो की भी बौछार होने लगी। मैं भाई के पक्ष मे सबसे अधिक आ गई। और एक रात जब एक खास कारण से मेरी नींद बरबस खुली, तब मैंने समझा कि उन नई-स्वादिष्ट चीजो और ढेर-के-ढेर पैसों के प्रतिदिन दिये जाने का क्या मतलब है। मैने क्रोध मे भर कर भाई को कई चॉटे लगाये। पर जो होना था, वह तो हो चुका था। फिर उसने चॉटे खाने पर भी बजाय क्रोध करने और उलटे मारने-झगड़ने के, चुपके से मेरे हाथ मे चॉदी के चमचमाते दो रुपये रख दिये। मैंने तैश मे आकर उन रुपयों को उसके मुँह पर जड़ दिया। पर फिर मैं स्वयं शान्त होकर लेट रही। वह भी डरते-सकुचाते-सहमते-भय-खाते मेरे पास लेट गया। और अन्त मे हमारा समझौता हो गया। लालच की विजय हुई। मैं खीझकर कुपित हुंकर भी उसकी बात मानती गई और अन्त में चक्रव्यूह के फंदे मे फॅस कर पैसो की कड़ियों से बनी लाभ की जंजीर के सहारे रसीले कारिंदे के शयनागार मे जा पहुँची। मेरे वहाँ पहुँचने का असली मकसद क्या है, इसका सारा रहस्य तो पहले ही मालूम हो चुका था। वहाँ जिस मनोमुग्धकारी चटपटे मादक रस का चस्का पड़ा, उसने मुझे बिल्कुल आपे मे न रहने दिया। मैं सर्वतोभावेन रसीले कारिन्दे की चेरी बन गई। मझे दीन-दुनिया से वैसा कोई काम न रह गया। रसीले कारिन्दे के संसर्ग मे मिलनेवाले अपूर्व सुख की अतृप्त लालसा के कारण मैं सब कुछ करने के लिए तैयार रहने लगी। माँ की झिड़की, कड़ाई, मार, साँसत और गाँववालों की उलटी सीधी, कटु-तीखी बातो की मुझे तनिक भी परवाह न रह गई। मुझे यदि किसी भी बात की परवाह थी, तो वह थी रसीले कारिन्दे को जैसे भी हो खुश रख कर उसके संसर्ग के सुख को अधिक-से-अधिक प्राप्त करने की। और इसी के लिए मैं पागल

रहने लगी।

सैकड़ों क्यारियों से चुन-चुन कर हजारों कलियों की सुगंध लेने वाले अनुभवी कारिन्दे से मेरी भावना छिपी न रह सकी। उसने मुझे अपने वश मे करके मेरी बड़ी बहिन को भी पार लगा दिया। और जब उसके तीन महीने चढ़ गये, तब तो माँ को बड़ी चिन्ता हुई। अन्त में बहिन के ससुराल वालों को भरपूर दे-दिलाकर माँ ने विदा कर दी। कुछ खनखनाहट के बाद मामला दब गया। पर मेरा भी खुलकर कारिन्दे के पास आना-जाना एकदम रोक दिया गया। फिर गाँव वाले मुझसे अधिक सतर्क भी रहने लगे थे। मेरे जरिये कारिन्दे ने और भी कई नई-नवेलियों को रस-रंग में सराबोर किया था। मामला बेढब होता जा रहा था। गाँववाले खुल कर कारिन्दे के पीछे पड़ने के लिए उतारू हो गये। अन्त मे उसे गाँव छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा। उसने बड़ी-बड़ी आशायें दिलाईं, बड़े-बड़े वादे किये, मुझे साक्षात् रानी बनाने की कसमे खाईं। और अन्त मे मुझे लेकर वह शहर भाग आया।

❁ ❁ ❁ ❁

रेल के डब्बे की खिड़की के मोटे शीशे में अपनी अस्पष्ट आभा पर आँखें पड़ते ही मैं स्वयं चौंककर आश्चर्य से एकटक उसी को निहारती रह गई। रंगीन, चटकीले कपड़ों ने और साज-शृंगार के बढ़िया साधनों ने मेरी सूरत को बहुत अधिक बदल दिया था। मैं मुग्ध हो अपनी धुँधली छबि की झाँकी देखती रह गई। मुझे होश तब आया, जब एक जोर के धक्के के साथ गाड़ी रुकी और मेरा सर शीशे का काम देने वाली खिड़की से टकराते-टकराते बचा। बाहर रसीले का रन्दे का स्वर सुन पड़ा. वे मिठाई और नमकीन तुलवा रहे थे। जनाने डिब्बे में बैठी अन्य अनेक स्त्रियाँ मेरी आवभगत देख कर दंग रह गईं।

शहर मे मुझे एक बढ़िया मकान में रक्खा गया। इसके पहले मुझे इतने अच्छे स्थान मे रहने का मोका न मिला था। खाने पहिनने का भी खास ही इन्जिाम था। बड़ी मौज मे मेरे दिन कटने लगे। नई उम्र की रंगीन तरगों की मस्तानी बहार के ये बेसुधीवाले हल्के सुबुक दिन न जाने किस तरह कितनी जल्दी फुर्र से उड़ गये। और जब गुलाबी खुमार का झोका तनिक झीना हुआ तब मैंने अवाक् होकर देखा कि मेरे स्वर्ग के राजा इन्दर ने पड़ोस की एक सुर्ख परी तमोलिन की लड़की से नैना उलझा लिये हैं और अब मैं उनकी नजरों से बिल्कुल उतर गई हूँ। भय, आशंका, उद्वेग से मैं अधमरी हो गई। मुझे शहर की बातो का जो कुछ भो बिना सलीके का अनुभव था वह केवल सिनेमा, मेला और दो-चार गिने-चुने लोगो तक ही सीमित था। एक तो था मेरा गॉव-देहातवाला सरल भोलापन, दूसरे नन्हीं उम्र का अल्हड़ लापरवाही वाला सलोना भाव, तीसरे रसीले कारिन्दे की 'जन्म-भर रानी' बना कर रखने की कसम का अटूट विश्वास; मुझे चिन्ता का कारण ही न देख पडता था। किन्तु जब एक दिन उस तमोलिन की छोकरी को रात के दो बजे लाकर रसीले कारिन्दे ने मुझे उठाकर द्वार के बाहर कर दिया, तब मेरी ऑखे खुलीं। तो भी ऑसुओं की धारा की बेहद बाढ़ के आने के कारण मुझे ससार मे कहीं भी कूल-किनारा न देख पड़ा। किन्तु भाग्य अच्छे थे। कारिन्दे के एक मनचले मित्र कई बार हमारे यहॉ आये थे और उनके साथ हम लोग भी कई बार मेला-तमाशो में गये थे। सयोग से या टोह लगाकर वे आये और मुझे अपने साथ ले गये। पहले से ही उनकी ललचीला ऑखें चुपके-चुपके कुछ कहती-सी जान पडती थीं! किन्तु रसीले कारिन्दे पर मेरा ऐसा प्रगाढ प्रेम था कि मैं किसी दूसरे की ओर ऑंख उठाकर भी किसो वैसे भाव से देखने तक के लिए तैयार न थी। किन्तु

इस समय मेरे उसी अगाध प्रेम को ठुकरा कर जब उसी दगाबाज कारिन्दे ने मुझे दर-दर की ठोकरें खाने के लिए सड़क पर निकाल दिया, तब मुझे होश हुआ। मुझे किसी सहारे की ज़रूरत थी। मैं इन नये ग्राहक के साथ हो ली। मुझे पेट भर अनाज और तन ढकने के लिए कपड़े की तो जरूरत थी ही।

इन नये प्रेमी के साथ भी कुछ दिन बड़े मजे से गुजरे। इन्होंने भी बड़े-बड़े वादे किये, बड़ी-बड़ी कसमें खाईं, लम्बी-चौड़ी आशाएँ दिलाईं, भविष्य के अत्यन्त मनमोहक चित्र खींचे। किन्तु मैं बहुत कुछ सतर्क हो गई थी। ऐसे लोगों के वादों का मूल्य अब मेरे सामने उतना अधिक न रह गया था। रंगरेलियां चल रही थीं, नित नये आयोजन होते। रसीली, लच्छेदार बातों का ओर-छोर न था। मैं भी खुले दिल से बहती धारा में मौजें मार रही थी। तो भी रहती सजग-सतर्क।

मेरी नई उठानवाली मदमाती उम्र थी। रंग भी काफी साफ था। चेहरा-मोहरा खासा अच्छा। इन सब पर शान चढ़ी थी रसीले रंगीले रंगरेलियों वाले मौजी जीवों के संसर्ग की। मैं अपने को ज्यादा-से-ज्यादा आकर्षक-उन्मादक बनाने के रहस्य को भी इन्हीं से सीख गई थी। भेदभरी नजरों को ताड़ने-पढ़ने, समझने का भी कुछ-कुछ मादा हो गया था। रस-रङ्ग की धार के बहाव में भी भोला अल्हड़पन बहुत कुछ धुल-पुँछ रहा था। अनेक तरह की तरंगों का संघर्ष जो सहना पड़ रहा था। जमाना खुद सिखा-समझा रहा था।

रंगरेलियों के रसीले साथी निकल ही आते हैं। मेरे नये आशिक के भी दो-चार दोस्त ऐसे थे, जिनसे वे कोई लगाव-दुराव-छिपाव न रखते। या शायद दुराव-छिपाव चल न सकता। दोस्त लोग अक्सर आते और सिनेमा-तमाशों में साथ-साथ रहते। मकान पर भी जमाव शामिल में ही होता। उनकी नजरें भेदों से

खाली न देख पड़ीं। और मैं तो दूध की जली थी ही। नज़रो-नज़रो मे यदि कुछ साफ-साफ न कहती, तो निराश भी न करती। आँखों से न सही, नयनो की कोरो से कुछ-न-कुछ आशा बिन्दु झलका ही देती। और मेरी यह दूरदर्शिता काम आई हीं। एक दिन मेरे नये आशिकज़ार ने भी एक नई चिड़िया को लासे में फँसाते-फँसाते मुझसे पिंजड़े को खाली कराने के लिए कमर कस ही तो ली। और मैं भी सजग-सावधान थी। मैं लात-गाली खाकर निकाले जाने के पहले ही अपने आप एक तीसरे रंगीले के जीवन मे रस घोलने के लिए साज सजाने लगी। आशिक नम्बर दो ने खुशी-खुशी यह समझौता स्वीकार कर लिया। और वक्तन-फवक्तन मेरे लिए रंगमहल नम्बर दो का दरवाजा एक प्रकार से खुला ही रह गया।

इस प्रकार रस-रङ्ग के महासागर में मौजे मारती, किलोलें करती, हिलकोरें लेती आकंठ निमज्जित एक-एक कर सात घाट पार कर गई। सभी घाटो पर यही आशा दिलाई गई थी कि रानी की तरह वहीं सुख से जीवन पार लग जायेगा। किन्तु कुछ समय बीतते-न-बीतते मुझे लहरो के थपेड़े खाते हुए आगे बढ़ना पडता और नई आशा-रानियों को स्थान देना पड़ता। मैं इस धारा में अपने जीवन के तेरहवें बरस मे पड़ी-बही थी। और केवल सात साल बीतते-न-बीतते जब मैं पीछे पलट कर देखती हूँ, तो मुझे स्वयं आश्चर्य होता है—उस दूरी को देखकर जिसे मैं इतने कम समय में ही इतनी तेजी से पार कर आई हूँ। अनुभव भी इतने हुए कि उनसे कई महाकाव्य तैयार हो सकते हैं। और जैसे-जैसे विचित्र जीवो से पाला पड़ा उनके संसर्ग की यदि चर्चा छेड़ने बैठूं, तो संसार आश्चर्य से दङ्ग रह जाये।

और अन्त मे मुझे इस बीसवें बरस अपने जीवन क्रम से ऊबकर ईसामसीह की छत्र छाया मे शरण लेनी पड़ी और अनेक

बार दाइयों-नर्सों की सहायता से अपनी तथा अपने अशेष-स्नेही प्रेमियों की प्रतिष्ठा की रक्षा करते रहने के बाद मुझे आज नर्स के कौशलपूर्ण, पर-उपकार रत कोमल कलामय, व्यवसाय को सीखना-अपनाना पड़ा। आज मै मशहूर नर्स हूँ, धर्म से ईसाई, कर्म से ....; और आज भी मेरे प्रेमी हैं ही !!

आज धोती के बाहर हूँ !!

आज दुनिया ही बदली हुई है। न अब मेरा नाम मूँगा है और न मैं इस समय धोती मे ही हूँ। "लड़कैयॉ के साथियो" की तो बात ही क्या, उठती उम्र और गदराते-मदमाते अंगो पर हजार जान से कुरबान होने वाले कुछ ही समय पहले के पागल पुजारी भी देखें तो शायद ही पहचान सके। इतनी ज्यादा बदल गई हूँ मैं।

मेरे रंग-रूप मे कमी आई कि नहीं, यह तो मैं कह नहीं सकती, हाँ इतना तो जरूर मानना पड़ता है कि पल-पल पर तेजी से बदलती रहने वाली रंगीन, पर मतलबी दुनिया की चपेटो ने मेरे सौंदर्य और मेरी बुद्धि पर शान जरूर चढ़ा दी। दोनों में ज्यादा चमक आ गई है, अनोखा निखार, चुभने वाली तीखी तेजी।

एक गरीब देहाती की लड़की भी समय की ठोकरें खाकर और तरह-तरह के लोगों के संघर्ष मे पड़ कर कितनी तेज और चालाक हो सकती है, इसका मै नमूना हूँ। अभी तीन बरस पहले मुझे दो-चार आने पैसे और पाव भर गुड़-गुलगुलों से भरमाया जा सकता था, पर आज नोटों से मोल-तोल करते

वक्त भी जरा होशियारी की जरूरत पड़ती है। अनुभव बहुत कुछ सिखा देता है।

मै बड़ी ऊंची जाति की हूँ! इतनी ऊँची जाति वाले काम को ज्यादा पसन्द नहीं करते। और पढ़ना-लिखना या कोई हुनर सीखना जरूरी नहीं समझते। मेरे पिता भी ऐसे ही ऊँची जाति वालों में से थे। आखिर जो थोड़ी-बहुत जमीन-जायदाद थी, वह बैठ कर खाते-खर्चते बिक-बिका गई। दानों को तरसने की नौबत आई तो गाँव छोड़ देना पड़ा। उस वक्त मै दस बरस की थी। बड़ी-बड़ी मुसीबतों के बाद शहर में किसी तरह गुजारा चलने लगा। पिता मोहल्ले के दो-चार भले घर वालो के सौदे-सुलुफ ला देते, उनके ऊपर के छोटे-मोटे काम चला देते, और छोटा मठिया के महादेवजी की पूजा-पत्री कर देते। माता पास-पड़ोस की स्त्रियों के पास जा-जाकर उनकी सेवा-टहल-खुशामद-चापलूसी करती। और बदले में कभी तुरन्त पैसे-दाने मिल जाते, या तिथि त्योहारों-पर्वों-उत्सवों पर सीधे पा जाते, दान-दक्षिणा ले मरते, निमंत्रण खा आते, भेंट-पूजा झटक लेते, इनाम-बखशीश उडा लाते। और इस तरह ऊँची जाति वाले हम लोगों के दिन किसी तरह बीतते ही जाते थे।

रंग-रूप मे मै मोहल्ल भर से ऊपर थी। बड़े-बड़े घरो की सुकुमारियाँ, नाजनियाँ मेरे सामने फीकी पड जातीं। उनके तड़-कीले-भड़कीले रेशमी कपडे, चमचमाते-जगमगाते सोने चाँदी मे जडाऊ गहने, स्नो-पाउडर लिपस्टिक आदि शृंगार के अपटू-डेट साधन और तरह-तरह के अन्य उपाय मिल कर भी उनके सौन्दर्य को मेरे भूख से झुलसे और गरीबी की मार से दबे-चपे रूप के आगे झक मारने से न रोक सकते। दिन बीत रहे थे। साथ ही गरीबी और भूख को एक ओर ठेल कर तेजी से बढ़ रहे थे मेरे अग। और साथ ही साथ मेरा सौंदर्य भी बुरी तरह

से बढ़ा जा रहा था। मेरा गुलाबी रंग ज्यादा-ज्यादा गाढ़ा होता जा रहा था। मेरे चेहरे का आकर्षण ज्यादा-तेज, अधिक तीखा होता जा रहा था।

गाँव मे लोगों का ध्यान मेरे रंग-रूप की ओर न गया हो, सो बात तो नहीं थी। मेरे लाल-लाल निखार वाले रंग के कारण ही तो मेरा नाम मुंगिया पड़ा था। पर शहर की बात ही दूसरी है। बनियो-महाजनो के छोकरों के हाथ मे छुटपन से ही पैसे इफरात से रहते हैं और उनके पैसों के और साफ़-सुथरे, गोरे-चिट्टे बदन के कारण शहरी गुंडे उनके पीछे पड़ जाते हैं। होश सम्भालते सम्भालते लाला माखनलाल ऐसे किशोर उन गुंडों की सोहबत से बहुत कुछ जानने-न-जानने वाली बातें अनायास ही सीख जाते हैं। न जाने कितनी कैसी-कैसी लतें लग जाती हैं, लालाजी की जवानी की आमद के बहुत पहले ही। और वे तेहरी चालो को चलने के लिये पागल हो उठते हैं। पैसों के लालची और किशोरों के शुकुमार-भोले अंगों के लालसी पेशेवर बहुत-कुछ सफेदपोश गुंडे नये लाला को अपनी अनुभवी नजरों के इशारो और उलझनदार, कटीली. लच्छेदार मीठी बातो की तानों पर कठपुतली की तरह नचाते रहते हैं। नई उमगों पर पेंगें भरने की लालसा मे नये लालाजी मन-ग्रेमन उनके शिकार बनते रहते। और शिकार बनने की इस बेजा बदनामी को ढकने, छिपाने, बचाने, मिटाने, बदलने के मंसूबो से दूसरे छोरो के शिकारी खुद बनने की सच्ची-झूठी जुरत करते। और कभी-कभी मेरी ऐसी गरीब किन्तु रूप-यौवन की जानी-समझी धनी छोकरियों की ओर आँख उठाने का साहस करने, मिलाने, फुसलाने, खींचने, खिलाने तमाशे करने-बनाने-बनने का स्वांग भरते। और ज्यादातर उसमे अन्त में बुरी तरह फँस-फँसा जाते। रुपये के और बाप-दादों के असर-व्यवहार-प्रभाव-दबाव-प्रयत्न के कारण वे तो प्रायः ही बच-

बचाकर निकल भागते। पर उनकी खिलवाड़ों, उनके लड़कपन की भूलों की शिकार बनने वाली भोली-भाली गरीब लड़कियों का निस्तार-निकास इतनी आसानी से भला हो कैसे सकता है। उन बेचारियों को तो मझधार में ही डूबना पड़ता। उनकी दुनिया ही बदल जाती। हुलिया कुछ-की-कुछ हो जाती। जीवनक्रम ही दूसरी ओर घूम जाता।

शहर में मैं आई तो भी अबोध बालिका के रूप में, पर बरस बीतते-न-बीतते मैं काफी सयानी, खूब होशियार, बातों के जानने समझने, कहने में बेहद चतुर हो गई थी। और इसके लिए मैं आभारी हूँ शहर के बड़े घरों की ऊँची महिलाओं की। वे परदे या नाम के परदे में मर्यादा-सम्मान से रहती हैं। ऊपर से रहती हैं प्रसन्न-सन्तुष्ट पर हृदय के अन्तस्तल से बेहद भूखी, असन्तुष्ट व्याकुल और इसी कारण किसी भी शिकार पर आँख बन्द कर टूट पड़ने के लिये बेचैन। समाज के सामने तनिक साफ रहना जरूरी है। वैसे भी अपने नित्य के सुख-सुभीते के विचार से रङ्ग जमाये रहना बुद्धिमानी की बात है। और इसी कारण वे ऊपर से खूब पाक-साफ रहने और बड़प्पन को अछूता बनाये रखने की खूब चेष्टा करतीं। नाक पर मक्खी न बैठने देतीं, पर आत्म संतुष्टि के लिये लुक-छिप कर रोज ही न जाने क्या-क्या करतीं। और उनके रहस्यमय शिकारों, अभिसारों, सन्देशों के लिये मेरी ऐसी नन्हीं, अबोध गरीब और सब में आसानी से आ जा सकने वाली छोकरियों की जरूरत पड़ती ही है। मेरे आते ही इन बड़े घर वालियों ने मुझे ताड़ा, समझा, जाँचा, परखा। और फिर अपने गुप्त-रहस्यों को सफल बनाने में मेरा भरपूर उपयोग किया। बस, उनके भँवर में पड़ कर मैं देखते-देखते अन्दरूनी दुनिया के सभी रहस्यों, गुप्त भेदों, छिपी बातों से परिचित हो गई। उम्र के लिहाज से अभी निरी दुधमुँही छोकरी, किन्तु जानकारी-राजदारी

के ख्याल से सुरूर वाली सुनहली दुनिया में बाल सफेद कराने वाली बड़ी-बूढ़ी नायिकाओं से भी चार कदम आगे। इस काम में पैसों की बौछार-सी होती, चकाचक माल चखने-छकने की भरमार रहती, इनाम-निशानी के नाम पर अच्छे-खासे कपड़े, छल्ले, शृंगार-संभार के सामान मिलते। और बड़े-बड़े घरों में पूछ होती, बुलावे आते, आदर-सम्मान होते सो घाते में ही! जहाँ किसी की पैठ की गुञ्जाइश न रहती, वहाँ मेरी बुलाहट बड़ी उत्सुकता-व्याकुलता के साथ की जाती।

मेरा आना-जाना बड़े घरों में बढ़ता गया। पैसों और पदार्थों के लालच ने माँ-बाप को मजबूर किया कि वे मुझे उन घरों में बराबर आने-जाने के लिये बढ़ावा देते रहें, कभी-कभी मजबूर भी करते रहे। माँ बहुत ही सीधी-सादी थी, एकदम गावदी, हजारों बरस पुराने ज़माने के ख्याल की। उन्हें मेरे चाहे जाने के रहस्य का वैसे पता न चला। शायद वे समझ न सकती थी। या समझ पर और समझने के बाद उसके मुताबिक उचित रीति से काम कर सकने की दृढ़ता पर गरीबी की बेबसी ने गाढ़ा परदा डाल रक्खा था। पिता को इन सब झंझटों से विशेष काम ही न था। घर-गृहस्थी चलाने के लिये पैसे लाने-जुटाने की झंझटों से उन्हें जितनी ही मुक्ति मिले उनके लिये उतनी ही मौज थी। फिर भला वे क्यों ज्यादा खोद-विनोद करते। मैं बन की चिड़िया की तरह घर-घर स्वतन्त्रता से डोलती-फुदकती-उड़ती-मंडराती रहती।

शिकार-शिकारी सुकुमार-सलोने नये लाला-बाबुओं की शर्मीली ललचाई हुई अदाओं भरी नजरें मुझ पर पहले ही से पड़ने-फिसलने लगी थी। पर मुझे उन सब बातों का भान-ज्ञान हुआ तनिक कुछ महीने बीतने पर। गाँव की भोली, अल्हढ़ छोकरी के लिये इन बातों को जानने-समझने में कुछ समय लगता ही। और जब समझी तब सहमने के बजाय कुछ सुखी ही

हुई। कारण थे कई एक साथ। इस रस के स्वाद का लोभ। रहस्यमयी दुनिया के खुद के अनुभव की झिझकती-ठिठकती, थिरकती आग बढ़ानेवाली विचित्र लुभावनी, प्रबल उत्सुक भावना। आमदनी के जरिये का धुँधला, आकर्षक विश्वास। सुखमय भविष्य की छलनी, मोहनी, धूप-छाँह-सी स्थिर-चंचल, काली-उजली आशा।

❁ ❁ ❁

पहले पहल जो आमदनी हुई, लाला-बाबू से जो प्रथम मिलन-सम्भाषण हुआ, उनका किन शब्दों मे वर्णन करूँ। दिवाली के बाद की बात है। एकादशी का त्यौहार था। मैं मोहल्ले की उजड़ी बगिया वाली अध-टूटी मठिया के महादेव जी के पास दीपक जलाने के लिये भेजी गई थी। मुझे अक्सर वहाँ जाना पड़ता था। रास्ता खूब जाना-समझा था। पैरों मे न तो कड़े-छड़े थे और न चप्पल-चटपटियाँ ही। कपड़े भी जरर-फरर-सरर वाले न थे। दबे पाँवों चलने की आदत-सी पड़ गई थी। गाढ़ा-झुटपुटा यहाँ कुछ ज्यादा घना होकर अँधेरा बन गया था। मठिया मे जाकर एकाएक दीपक जलाया। टिमटिमाता प्रकाश जगर-मगर कर उठा। और उसी क्षीण प्रकाश मे मठिया के एक कोने में पास-पास दो आकृतियों पर सहसा मेरी नजर पड़ी। दियासलाई मेरे हाथ से छूट कर दूर जा गिरी। मेरे मुँह से एक चीख निकल गई। मेरी टकटकी उसी ओर बँध गई। शरीर काँपने लगा। कलेजा उछल कर मुँह को आने लगा। यह सब क्षण भर में हो गया।

पर यह क्या? उन आकृतियों में से एक ने मृदुल-कण्ठस्वर से निकले तनिक कठोर भाव में कहा—'डरो मत मूँगा! मैं हूँ राधेलाल। व्यर्थ क्यों चिल्लाती हो।' और वे यह कहते-कहते मेरे पास आ गये।

मेरा आधा डर दूर हो गया। राधेलाल हमारे मोहल्ले के बड़े सेठ के सबसे छोटे लाड़ले लाल थे। और सेठजी के घर से हम लोगों को काफी अन्न-पैसों की सहायता मिलती रहती थी। मैं आश्चर्य से राधेलाल की ओर देखने लगी।

राधेलाल ने मेरा हाथ पकड़ कर मुट्ठी भर पैसे थम्हा दिये और न जाने क्या-क्या कहा। उस समय उनका कण्ठस्वर काँप-सा जाता था, हाथ कुछ थरथरा रहे थे, वस्त्र अस्त-व्यस्त थे, आँखो और मुख पर शर्म की गहरी छाप थी।

उनके साथ था एक बदनाम गुंडा। और वे मुझे अपनी ओर मिला कर मेरे मुँह को बन्द करना चाहते थे। यदि वे न बोलते, मेरे पास न आते तो शायद डर के मारे मै कुछ समझ भी न सकती। मुझे भान भी न होता कि इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में क्या-कहाँ हो रहा है। खास कर राधेलाल की लजीली नजर और न-कहनी अनोखी बात का मुझे स्वप्न मे भी ख्याल न हो सकता। वैसी अनहोनी बात की कल्पना भी नहीं हो सकती थी। पर उनके शर्मीले-दबे-कड़कीले ढंग से बोलने, लटपटाते हुए कपड़े संभालते आकर मेरी खुशामद करने, मुझे भरपूर रिश्वत देने आदि ने मेरे आश्चर्य चकित नेत्रों के सामने सारी अकल्पित घटनाओं को साफ खोल कर रख दिया। मैंने किसी से न कहने का वादा कर उनसे पीछा छुड़ाया। पर वे मुझसे पीछा न छुड़ा सके। शायद छुड़ाना चाहते भी न थे। मुझे जब पैसो की जरूरत पड़ती और कही ठिकाना न लगता, तो आ-पहुँचती लजीले लाला राधेलाल के सामने। और शोखी से मुस्कराती हुई मेरी आँखो के इशारे पर पैसों की वर्षा हो जाती।

फिर तो ऐसे-ऐसे कई मामले आप-से-आप मेरे सामने आये, और मैंने अपनी गरीबी और उम्र के मुताबिक उन सबसे लाभ भी खासा उठाया।

ऐसे ही घाटों से होती हुई हमारी जिन्दगी और गरीब-गृहस्थी की नदी की धारा अपनी उमंगो में आगे बढ़ती गई। छेड़-छाड़ बराबर चलने लगी थी। रंगीले लाला-बाबुओं में से दो-चार ने अपनी शान जमाने और झेंप छुड़ाने के लिए मुझे हाथ लगाने की भी नाजुक-सुबुक कोशिशें की थी। कई बार मैं उनके फंदों में जकड़ भी गई। पर एक तो मेरी कच्ची उम्र और दूसरे लाला-बाबू ठहरे खुद नाजुक-सुबुक-लजीले-लचीले। इस कारण उनकी माशूकाना हरकतो से वैसा विशेष कुछ अन्तर न आने पाया। बात ऊपर की ऊपर ही रह गई। हाँ, उन पर रोब गाँठने, उन्हें दबाने और भरपूर रकम वसूल करने का एक अच्छा नया ज़रिया और मेरे हाथ लगता गया। चलते थे मुझे शर्माने-दबाने के हौसलों पर चढ़कर और अपनी खुद की माशूकाना नाजुक अदाओं के सबब से बेचारे खुद ही हमेशा के लिए झेंप की गिरफ्त मे जकड़ जाते। मैं और भी शोख हो उठती।

इसी तरह प्रायः दो वर्ष और बीत गये। पहले मोटे झोटे अनाज की रूखी-सूखी रोटियाँ भी भरपेट कभी-कभी ही नसीब होतीं। अब रोज बिला-नागा तरमाल छकने को मिलते। वह भी भूख से कहीं ज्यादा। बदन में गोश्त-चरबी का तेजी से बढ़ना जरूरी था। और यहाँ आने पर रात-दिन रंगीन रहस्यमय परि-स्तान के बीच सुरीली तानों और दिल फड़का देने वाली बातों को सुनते-कहते-सोचते बीतता था। इस कूचे की कुछ हवा ही ऐसी थी कि मैं मौसम के पहले ही गदराने लगी।

इधर राधेलाल को एक नई रसीली दुनिया का पता चला। उनके यहाँ कोई काम पडा। बाहर से अनेक मेहमान आये। उन्हीं में थीं एक रिश्ते की भाभी जान। उम्र तीस के ऊपर। किन्तु शरीर की गठन और कद के ठिगनेपन के कारण देखने में यही कोई पच्चीस के अन्दर की ही लगती थीं। वे चटक-मटक

से रहने की शौकीन थीं। हँसी-मजाक में रात-दिन मस्त रहने की आदी। कहनी-न-कहनी भद्दी बातों की फुलझड़ियाँ छोड़ती रहने के लिए मशहूर।

आते ही उन्होंने सुबुक सुकुमार राधेलाल को अपनी चुभती, फड़का देने वाली फुलझड़ियों का निशाना बनाना शुरू किया। और हँसी-मजाक मे नौबत हाथापाई की आ पहुंचती। राधेलाल को भी इस गुत्थमगुत्था से खासा मजा आने लगा था। अन्त में एक दिन यों ही मजाक-मजाक में भाभी साहबा ने सुबुक-नाजुक राधेलाल को एक अपूर्व अनुभव करा दिया। राधेलाल के जीवन में ऐसा स्वाद एकदम अनोखा था। वे उसे चखने के लिए बराबर बेताब रहने लगे। पर भाभी थीं दुनिया देखी हुईं। वे जानती थीं कि समाज किसी काम का उतना बुरा नहीं मानता जितना कि उसके प्रकट होने को बुरा समझता है। बुराई को नहीं, उसके जाहिर होने को दण्डनीय मानता है। वैसे गुपचुप चाहे जो होता रहे, उसकी कोई परवाह नही। भाभीजान तो समाज से बचकर खेल खेलना चाहती थीं। पर सुबुक-सलोने राधेलाल को एक अनोखा स्वाद मिला था। वे भला कैसे थोड़े मे शान्त रह सकते। अन्त मे तीसरे दिन भाभीजान बहाना बनाकर इज्जत के विचार से भाग गईं। राधेलाल तड़प उठे। और मेरी शामत आई। पर इसके पहले भी मेरा उनका साबका पड़ चुका था। किन्तु वे थीं नादानी भरी अनाड़ीपन की अल्हड़ चोचलेबाजियाँ। तब न तो लालाजी सीखे-समझे हुये थे और न मैं ही उभरी-संभली हुई थी। पर इस बार बात ही कुछ और हुई। फुलझड़ी वाली भाभी की कृपा से लालाजी को नया अभ्यास हुआ था। अनोखा अनुभव। और मुझे वेदनामय मधुर रस मिला। इस बार पहले की तरह टहलने-फिसलने की बात न हुई। गनीमत हुई कि सुखद रंगीन शुरुआत हुई राधेलाल

के बड़े मकान के पिछवाड़े वाले कमरे मे। पहले तो हम दोनों कुछ ज्यादा डर गये। पर सँभलते देर न लगी। हमने कुछ कपड़ों को जलाने-फाड़फेंकने मे ही खैरियत समझी। मैं एक नई दुनिया के अन्दर दाखिल हो गई। जिस रस की बातें सुनती, उसी की गम्भीर धारा मे धँसकर हिलकोरे लेने लगी।

महीने बीते। मैं इस फन मे भी मँज गई। इसी बीच मेरे यहाँ एक कालेज के विद्यार्थी भोजन करने आने लगे। खूबसूरत तो न थे। पर बेहद बने-ठने रहते। अंग्रेजी कपड़ो-जूतों मे लैस, टोप-टाई से चुस्त-दुरुस्त। ऊपर से रोब-दाब से रहते, पर अन्दर-ही-अन्दर घुलने-मिलने के लिये तरसती कोशिशें जारी रखते। पैसे भी जी खोल कर फेंकते। और कुछ ही दिन मैं मैं उनके रोबीले फन्दे मे फंस गई।

आस-पास के लाला-बाबुओ से वैसे मिलना-मिलाना जरूर होता। पर कभी-कभी ही। वह भी डरते-डरते, लुक-छिप कर। पर इन साहब से तो रोज ही साबका पडने लगा। उन्होंने माता पर नकद आमद के लालच का और साहबी रोब का जादू चढा रक्खा था। पिता पर उन्नति की आशा और हर तरह के खर्चों को चलाते रहने की पूरी जिम्मेदारी की छलनी खातरी का नशा। उन दोनों से पूरी बेफिकरी थी। और मुझे रुपयो और तोहफो के अचूक मन्त्र के बल पर नचाना शुरू किया। हम दोनों ने समझौता कर लिया। वे पिता को किसी-न-किसी बहाने से टाल देते। मैं कोई-न-कोई लाभ का काम बताकर माता को किसी सेठ-बाबू के घर भेज देती। और फिर चलती हमारी स्वच्छन्द रङ्गरलियाँ। मौज से दिन बीत रहे थे। मोहल्ले में और मोहल्ले के बाहर भी मेरी बाते तेजी से फैल रही थीं। पर मैं बहुतों के रहस्यों को जानती थी। घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं। एक-दूसरे की ढँकी-मुँदी रहने देना भी बुद्धिमानी का काम है।

जान-सुनकर भी कोई ज्यादा जोर न देता । वैसे भी मेरा कद औसत दर्जे की लड़की से कही ज्यादा लम्बा था । मालों की खिलाई, मौज की उमंग, स्वच्छन्दता भरी जिन्दगी और नित-नये तोहफों का बढ़ावा । पन्द्रहवे बरस को पार करने के पहले ही मैं १८-२० साल की मस्त गजगामिनी देख पड़ने लगी । और इसी बीच मे मोहल्ले के नये उभार वाले लाला-बाबुओं के अलावा उनके बूढ़े, अध-बूढ़े, पिता, चाचा, ताऊ, मामा, मौसा आदि लक्ष्मी के लालों ने ललचाई आँखे मेरी तरफ उठाईं । और मन-बेमन उनकी मनोकामनाओं को पूरी करते रहने के लिये मुझे मजबूर होना पड़ा । कभी लालच के कारण । कभी कभी जोर-दबाव मे पड़कर । कभी झांसा-पट्टी मे आकर । कभी चक्रव्यूह में फँस कर । कभी किसी गरज से ही । मैंने उन्हे तारा-बघारा । उन्होंने मुझे लूटा-खिलाया ।

सभी जानते थे कि मैं क्या-कैसी हूँ । पर मामला तब उभरा जब जल्दी-जल्दी मेरा विवाह किसी तरह कर दिया गया और मैं शादी के साथ ही ससुराल भेज दी गई । वहाँ मेरी विधवा ननद ने हो-हल्ला मचाना शुरू किया । बात फैलते देर न लगी कि मैं मायके से तीन-चार मास का पेट लेकर आई हूँ । मामला शायद इतना बीहड़ न हो उठता, पर दहेज के मामले मे चखचख चल चुकी थी । ससुराल वाले मेरी शोहरत से बेखबर हों, सो बात न थी । उन्होने मेरे रूप की चकाचौंध मे आकर और दहेज से मालामाल होने के लालच मे पड़कर शादी तय की थी । बहुत-सी बातें सुन-जान-समझकर भी । उन्होने जितना तय किया था, प्रायः उतना शादी मे मिला । पर मेरे ऊपर सेठों-सेठानियों की खास कृपा दृष्टि थी । बारात वालों ने मोहल्ले के बड़े लोगों का जो सदय रुख देखा, उससे उनके मुँह फैल गये । मांग इतनी ज्यादा बढ़ गई कि उसका पूरा किया जा सकना आसान न था ।

लड़ाई-झगड़ों के साथ शादी की रस्मे पूरी की गईं। और मैं ससुराल जा पहुंची। पर आते ही नया बवंडर उठ खड़ा हुआ। अन्त मे एक फटी धोती पहना कर मैं बाप के घर लाकर छोड़ दी गई।

और अब मेरे लिये एक अजीब भयानक दुनिया शुरू हुई। सभी को सब बातों का पता था। पर वे भोले बन कर मुझसे पूछते—'यह किसकी अमानत है?' 'किसके पाप का जीता नमूना है?' 'किसकी जलती निशानी?'

जो बूढ़े, अधेड सबेरे की लाली के पहले उठ, रामनामी ओढ़ कर माला-कमण्डल ले गङ्गा नहाने जाते वक्त यदि मुझे पा जाते तो मठिया-मन्दिर मे चुपके-चुपके कुछ समय बिताकर तब स्नान करने लपकते, वे भी आज दूध के धोये, शुद्ध, पवित्र, सच्चरित बन कर कानों पर हाथ रखते, राम-राम कह चेहरे को विकृत कर लेते और हजार चुने हुए शब्दों मे मुझे आशीर्वाद देते। वे मेरी छाँह से बचने का उपदेश देते न थकते। जिन बड़े घरों की मनचली मौजी स्त्रियों ने रङ्ग-रास रचाने मे छुटपन से ही मेरी मदद ली थी, वे ही प्रकट-सती-साध्वी मुझे अपने घरों की देहली के अन्दर आने देने मे महापाप समझती। वे कैसी हैं, यह मुझसे छिपा न था। मैं उनकी सोहबत मे पड़कर क्या कैसी हो गई थी, इसका उन सबको राई-रत्ती पता था। पर इस समय मेरा सबसे बड़ा अपराध था अपने पाप को छिपा सकने में असफल होना। न पेट रहता और न मैं कलङ्किनी, अपराधिनी, बहिष्कृता मानी जाती।

समाज अपराध के लिये दण्ड नहीं देता। वह तो दण्ड देता है अपराध को करने के बाद उसे जनता से छिपा रखने में असफल होने के लिए।

अंग्रेजी वेष-भूषा-तौर-तर्ज-मिज़ाज-चलन वाले उन कालेज के सुशिक्षित साहब ने मुझे बड़ी आशाएँ दी थीं। और शायद वे

मेरे इस हाल के लिए जिम्मेदार भी सबसे ज्यादा थे । पर सबसे पहले उन्हीं ने आँखे फेरीं। एक दम आना-जाना बन्द कर दिया। मेरे पिता उनके पास गये, तो उन्होने बड़ी बेरुखाई से उन्हे डाट कर निकाल दिया। वे तो मौज के साथी थे।

मोहल्ले मे रहना कठिन हो गया माता-पिता की आमदनी के जरिये रुक गये। मेरे साथ मौज-मजा लूटने वालों के भी धर्म की हानि मेरे वहाँ रहने मात्र से होने लगी। और अन्त मे मुझे हार कर उस स्थान से भागना पड़ा।

और कई तरह के तजुर्बे हासिल करने पड़े । दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं। समाजों के हथकडे देखने को मिले। जनता के उपकार के नाम पर खोले गये विधवा-आश्रम और प्रसूति गृहों की जघन्य लीलाओ के हृदय-विदारक कटु अनुभव हुए। और अन्त मे मुझे नायिकाओं के चंगुलो में से होते हुए अपनी इस आज की प्रच्छन्न पाप से ओतप्रोत प्रकट रूप मे विलासितामय तड़क-भड़क वाली स्थिति मे आकर शरण लेनी पड़ी।

आज मैं नवाबों की मशहूर नगरी मे हूँ। बड़ो-बड़ों की बस्तीमें मेरा भी एक आलीशान सजासजाया बंगला है नाम से मैं आर्टिस्ट हूँ। गले के लोच और स्वर के मिठास के नाम पर रेडियो, स्क्रीनों आदि के प्रोग्रामों में काम करनेवाली मशहूर स्टार। पर असल में रंग-रूप, नाक-नक्शे की खूबियों और बनाव-सिंगार के कमाल के सबबसे हरदिल-अजीज। स्वर लहरी से जितना कमा लेती हूँ, उससे कई गुना ज्यादा ऐंठ लेती हूँ अपनी बातो की सफाई और रूप की लुनाई के बल पर। पर आज मेरी इज्जत है। खासा रोब-दाब। बड़े-बड़े मुझसे बातें करने, मेरी झलक पाने के लिए तरसते हैं।

फर्क सिर्फ इतना ही है कि आज मैं धोती के बाहर हूँ। समाज मेरे पैरो पर लोट रहा है। पर कब ? मुझे धोती के बाहर होना पड़ा तभी ! कितनी शक्ति है धोती के बाहर होने मे !!!——

जलता-दहकता-काजल

झकझकाते, रङ्गबिरंगे बिजली के हजारो बल्बों के चकाचौंध पैदा कर देने वाले तेज प्रकाश ने ज्वाला के पञ्च-महले गगन चुम्बी प्रासाद को मोहल्ले भर मे ही क्या, सारे शहर में मशहूर कर दिया। मोहल्ले के बड़े-बड़े रईसों-जमींदारो-अमीरों के ऊँचे-बड़े घरो पर जगर-मगर करने वाले हजारो दीपको की ज्योति एक दम फीकी पड़ गई। शहर भर मे तहलका मच गया। हजारों व्यक्ति ज्वाला के महत्व की अजीब रोशनी देखने के लिए दौड़ पड़े। बम्बई कलकत्ते की दिवाली का दुर्लभ दृश्य ज्वाला के ज्योतिर्मय महल ने उपस्थित कर दिया। ऐसा जान पड़ता, जैसे जमीन से लेकर आसमान तक बिजली की धारा नाना रङ्गो-रूपो में प्रवाहित हो रही हो।

और सोलह बरस की ज्योतिवाली ज्वाला की भी शोहरत दिवाली के दीपको की भाँति शहर भर में फैल गई।

ज्वाला के पिता बारह बरस बाद कलकत्ते से अपने पुराने स्थान पर लौट कर आये थे। गये थे फाके-मस्ती वाली भीषण दरिद्रता के झंझावात मे उड़ कर, और लौटे ऐश्वर्य-सम्पत्ति के जहाज लाद कर। पुराने खपड़ैल के स्थान पर पाँच मंजिल का, फूलो वाली रंग बिरंगी चमकदार टाइलों एवं नूतनतम पेन्टो से झकझकाता राजमहल खड़ा कर लिया गया था। आस-पास के घरो-खंडहरो को लेकर महल के चारो ओर शानदार सुरम्य नजर बाग महमहा रहा था। गरीब से धनी होने वाले नये शौकीन बाप की इकलौती बेटी ज्वाला के लाड़-प्यार का कहना ही क्या! फूलों पर चलती, गुलाब-जल-से कुल्ले करती। जिस दूकानदार की चीजें उसके सामने पड़ती, उसका भला हो जाता।

दुलारी, इकलौती बेटी होने पर भी सुन्दरी ज्वाला बड़ी ही हँसमुख, आवश्यकता से अधिक साधो, जरूरत से ज्यादा दयालु, और कल्पना से कहीं बढ़ कर दुःखियों की सेवा-सहायता करने वाली थी। मोहल्ले भर में उसकी हँसी बिखरी रहने लगी, घर-घर उसकी दया ममता सहृदयता की गुलाबी फुहारें छूटती नजर आने लगीं। लोग उसके नये अमीर पिता के घमंडी स्वभाव से जितने चिढ़ते-कुढ़ते, उतने ही ज्वाला के उदार मिलनसार मिजाज से प्रसन्न हो आठों पहर उसका बखान करते न थकते।

वह मोहल्ले में स्वर्ग की अप्सरा और दया-माया-ममता की साकार देवी-मूर्ति बन कर आई थी।

उसके गरीबी के दिनों का एक साथी था हरेन। ज्वाला के जैसे-जैसे दिन फिरते गये, हरेन के वैसे ही वैसे बिगड़ते गये। और हरेन के क्लार्क पिता की अचानक मृत्यु के बाद से तो कच्ची गृहस्थी रौरव नरक बन गई, दरिद्रता की नृत्य स्थली। हरेन की माता, उसकी विधवा फूफी और सधवा-विधवा बड़ी बहन एक-एक मुट्ठी दानों को तरसने लगीं। ऐसे गाढ़े समय मे ज्वाला ने छिपे छिपे हरेन के कुल परिवार की हर तरह से सहायता की। केवल दया से प्रेरित होकर ही। उसके कोई भाई न था। उसने हरेन को अपना सगा छोटा भाई ही समझ रक्खा था। वर्षों से वह उसे चुपके चुपके राखी बाँधती, होली-दिवाली की भइयादूजों को हरेन के विधिपूर्वक टीके काढती। ज्वाला की प्रेरणा सहायता से ही हरेन कालेज मे भरती होकर बराबर पढ रहा था।

दिवाली के पहले हरेन बीमार पड़ा। रोग ने भयंकर रूप धारण किया। मरने-जीने का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। ऐसे सङ्कट के समय मे ज्वाला ने रात-रात भर जागकर, दिन-दिन भर खाना पीना छोड़कर, पानी की तरह रुपये बहा अच्छे से अच्छे डाक्टरों वैद्यों को बुलाकर रहेन की जान बचाई। और खूबी यह कि

सब किया गया अपने अमीर पिता की चोरी मे ही।

त्योहार के दिन तक हरेन भी बहुत कुछ संभल चुका था। सबसे अधिक प्रसन्नता थी ज्वाला को। वह अपनी खुशी के फव्वारे को रोक न सकती थी। त्योहार पर भाई के चंगे होने की प्रसन्नता मे वह थिरकी-थिरकी फिरती थी, नाच-नाच उठती थी, गुन गुना पड़ती, फड़क उठती। उसने मिठाइयॉ बॅटवाई, रुपये निछावर किये, ब्राह्मणो का भोजन कराया, देवी-देवताओ को पूजा अर्चा से सन्तुष्ट किया।

दिवाली की रात आधी से अधिक जा चुकी थी। जगमगाते हुए दीपको की ज्योति मन्दी पड रही थी। बाजार-हाट मे चहल पहल कम हो रही थी। केवल जुए के अड्डो पर तेजी जरूर थी, काफी गरमा-गरमी थी। ज्वाला चुपके-चुपके अपने उज्ज्वल महल से खिसक कर हरेन के टूटे-फूटे मकान मे जा पहुॅची। हरेन की माता ने उसका स्वागत किया। उसे प्रेम मे कुछ मिठाई खिलाई, मीठी-मीठी बातें की और हरेन के साथ उसकी ऑखो मे भी शुभ काजल लगा दिया। हरन उस समय ज्वाला के साथ एक ही चारपाई पर बैठा था। पहले ज्वाला ने काजल लगवाने से तनिक आनाकानी की। हरेन ने योंही ज्वाला के पीछे खड़े होकर उसके दोनो हाथ पकड़ लिये। ज्वाला ने कुछ ज्यादा हाथ-पैर चलाये। हरेन को कुछ अधिक झुक कर जरा ज्यादा नजदीक आकर उसे कसकर पकड़ना पड़ा। हरेन की माता ने आकर हॅसते-हॅसते उसको ऑखो मे काजल लगा दिया। इसी समय पास-पड़ोस की कुछ लड़कियाँ, स्त्रियॉ, लड़के, युवतियॉ उस ओर आ गई, उन्होने हरेन और ज्वाला को उस स्थिति मे खिड़की से देख लिया।

उस समय का काजल ज्वाला के लिए जलता, दहकता अंगारा हो गया। उससे ऐसी ज्वाला फैली कि ज्वाला का सारा भविष्य ही जल-बल कर खाक होने लगा।